॥ नमामि गुरु तारणम् ॥

चिंतन वैभव

(चिंतनशील विचारों की सूत्रावली)

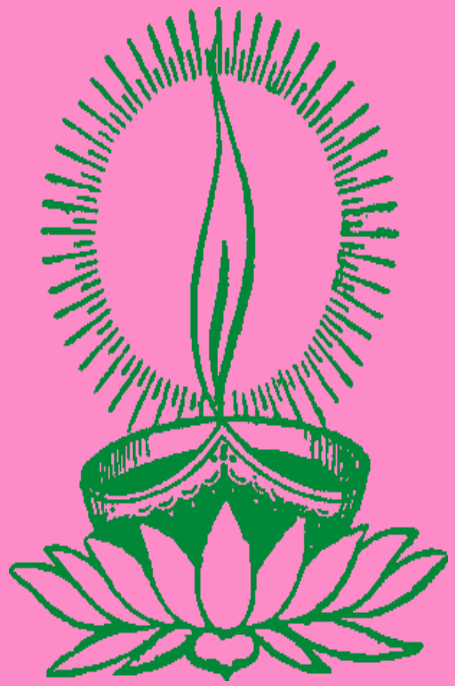

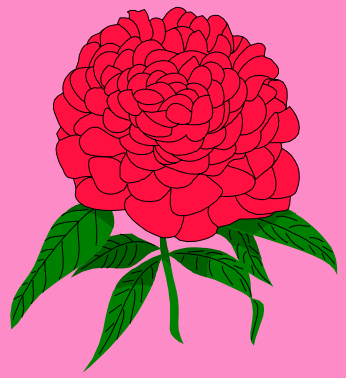

ब्रह्मचारी बसन्त

॥ नमामि गुरु तारणम् ॥

चिंतन वैभव

(चिंतनशील विचारों की सूत्रावली)

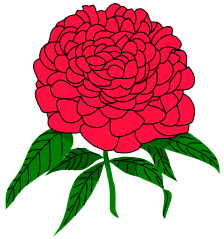

: लेखक :

ब्र.बसन्त

: अनुवादक एवं संपादक :

पं.ईश्वरचंद्र गोयल छिंदवाड़ा (म.प्र.)

: प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थल :

ब्रह्मानंद आश्रम

संत तारण तरण मार्ग, मंगलवारा

पिपरिया (होशंगाबाद) म.प्र.

मूल्य १० /-

❋ वन्दे श्री गुरु तारणम् ❋

चिंतन वैभव

चिंतामणि रत्न

धन धरा का है, धरा पर ही धरा रह जायेगा ।
मुट्ठी बांधे आया है तू, कर पसारे जायेगा ॥

माया की गति छाया जैसी, धरै चले तो धावे ।
ताहि छोड़ जो भाग चले तो, पीछे पीछे आवे ॥

जीव अकेला आया है, और अकेला जायेगा ।
जैसी करनी यहां कर रहा, वैसा ही फल पायेगा ॥

जब तक अटपट में रहे, तब तक खटपट होय ।
जब मन की अटपट मिटे, झटपट दर्शन होय ॥

पुण्य पाप तज निज भजो, आतम गुण रुचि लाय।
सम्यक्दर्शन के उदय, अजर अमर हो जाय ॥

सद्गुरु तारण तरण का, यह संदेश महान ।
ध्याओ निज शुद्धात्मा, करो आत्म कल्याण ॥

'आराम' अगर चाहे, आ 'राम' की तरफ ।
फन्दे में फंसना चाहे, जा दाम की तरफ ॥

देवत्व का रहता सदा, चैतन्य में ही वास है ।
कैसे मिले वह अचेतन में, जो स्वयं के पास है ॥

नव द्वारों का तन है पिंजरा, चेतन इसमें रहता ।
उड़ जाये तो क्या अचरज है, अचरज कैसे रहता ॥

अनहद् नाद सुहावनों, आतम नाद कहाय ।
बजै अनाहत कमल में, गुप्ति गहर सुखदाय ॥

CHINTAN VAIBHAWA

1. The 'Supreme Spirit' different from entire 'Karmas', deformities, form of original knowledge abounding in form of the Almighty, illuminating all truth and untruth under every condition, at all times, is visibly present in form of witness, I salute repeatedly to such a witness, the Supreme Spirit.

2. You have come solitary in this world and you will depart from the world quite alone. Neither any splendour you have brought along with you nor you will carry away anything along with you, save of religion or 'karma' only would have to go along with you. Now think about own-self as to what has to be done in this life.

3. Death is the ultimate truth of life and it will take place without-fail, this is quite sure, therefore don't be afraid of it. Do not consider death like pains on the contrary celebrate it with self-klnowledge enthusiastically like a festival.

4. You are not the body the body does not belong to you. The body is transitory; you are immortal. You must - know your own form relinquishing pride of the body. This is the only way to gain immortality.

5. Whatever has had to happen in the past, had been over, forget that whatever would be happened in future shall have to take place, do not worry about it, live in the present, remain to be a witness. This is the secret of usefulness of life.

6. "Bhoot to bhoot hai, Bhawi ek sapna hai, vartman main jeo bhai', yahi to apna hai."

7. If something impossible might have taken place in life, then it can be reckoned but improbable never happens to be, something certain bound to happen that very takes place, then why do you think about that.

चिंतन वैभव

१. परमात्मा समस्त कर्मों से, विकारों से भिन्न शुद्ध ज्ञान स्वरूप, निर्विशेष स्वरूपमय, सत्-असत् सबको प्रकाशित करता हुआ सभी अवस्थाओं में सदाकाल साक्षी रूप में साक्षात् विराजमान है, ऐसे साक्षी परमात्मा को बारम्बार नमस्कार है।

२. संसार में तुम अकेले आये हो और संसार से तुम अकेले ही जाओगे। न तो कुछ वैभव तुम साथ लाये हो और न ही कुछ तुम साथ लेकर जाओगे, मात्र धर्म या कर्म ही तुम्हारे साथ जाने वाला है अब स्वयं सोच लो कि इस जीवन में करना क्या है ?

३. मृत्यु जीवन का अंतिम सत्य है और वह अवश्य ही घटित होगी, यह बिल्कुल निश्चित है इसलिये इससे भयभीत मत रहो। मृत्यु को दु:खों के रूप में न समझो बल्कि इसे आत्म ज्ञान पूर्वक महोत्सव के रूप में उत्साहपूर्वक मनाओ।

४. शरीर तुम नहीं हो, शरीर तुम्हारा नहीं है। शरीर नाशवान है तुम अविनाशी हो, तुम देहाभिमान त्याग कर अपने स्वरूप को पहिचानो यही अमरत्व प्राप्ति का मार्ग है।

५. अतीत में जो होना था वह हो चुका, उसे भूल जाओ। भविष्य में जो होना होगा वह होगा, उसकी चिंता मत करो, वर्तमान में जिओ, साक्षी रहो यही जीवन की सार्थकता का रहस्य है।

६. भूत तो भूत है, भावी इक सपना है ।
वर्तमान में जिओ भाई, यही तो अपना है ।।

७. यदि जीवन में कुछ अनहोनी होवे तो उसकी चिंता करो किन्तु अनहोनी कभी भी होती नहीं, जो होनी है वही होती है फिर चिंता क्यों करते हो ?

8. Transformation of the world, body etc. is being going on at every time; change is the law of nature, that which you consider destruction, concealed into that very is inhibiting creation.

9. The ignorant being considers the body to be 'I' his egoistic sense happens to rest upon body. The learned considers that "I am the soul", his egoistic sense abounds in the soul and accomplishes united with discretion and knowledge accepts that I am "Brahman the God." This egoistic sense happens to be in his original soul form of true spirit. Accomplishment of the form of original self is merely a means of becoming Supreme spirit from spirit.

10. Whatever you do, do it with the sense of a witness, in natural transformation of nature you have no right to interfere.

11. By ignorance, pain; with right-knowledge happiness and by perception-dignity of emancipation of soul happens to be gained.

12. Existence of feeling of 'mine', the sense of belonging something to me is infatuation or attachment that is the root cause of worry and fear. Attachment causes one to be drowned in the world. Existence of the sense of "Not Mine" is disillusionment that rescues one from the world.

13. Religion does not consist in any caste, creed, sect, tenet and religious society; religion exists in compassion, tenderness, charity of doing good to others and in identification of self form, that is the message of all the religious preceptors of the world.

14. In whatever, how so ever position you are, be remained to be so, do not copy anyone, for in coping exists pain and in original exists pleasure.

८. संसार शरीर आदि का परिवर्तन प्रति समय चल रहा है, परिवर्तन प्रकृति का नियम है तुम जिसे विनाश समझते हो, उसी में सृजन छिपा है।

९. अज्ञानी जीव देह को ही मैं मानता है, उसकी देह में अहं बुद्धि होती है। विद्वान मानता है कि ''मैं जीव हूं'' उसकी जीव में अहं बुद्धि होती है तथा विवेक विज्ञान युक्त साधक मानता है कि ''मैं ब्रह्म हूं'' उसकी सत्यात्मा स्वरूप शुद्धात्मा में अहं बुद्धि होती है। शुद्धात्म स्वरूप की साधना ही आत्मा से परमात्मा होने का उपाय है।

१०. जो कुछ भी करो साक्षीभाव से करो, प्रकृति के सहज परिणमन में हस्तक्षेप करने का तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है।

११. अज्ञान से दु:ख, सम्यक्ज्ञान से सुख और अनुभव से मुक्ति पद प्राप्त होता है।

१२. ''मम'' का भाव मोह है जो चिंता और भय का मूल है, मोह संसार में डुबाने वाला है। ''न मम'' का भाव निर्मोह है जो संसार से तारने वाला है।

१३. धर्म किसी जाति, मत पंथ और सम्प्रदाय में नहीं होता, धर्म जीवों पर करुणा, दया, परोपकार और आत्म स्वरूप की पहिचान में है जो संसार के सभी धर्म गुरुओं का संदेश है।

१४. तुम जो कुछ जैसे हो वही रहो, किसी की नकल मत करो क्योंकि नकल में दु:ख है और असल में सुख है।

15. Saints are not bound with any caste or creed, they happen to be for all creatures just as the sun illuminates for all, rivers flow equally for all similarly saints too happen to be beneficent for all.

16. No one is inferior or superior by nature in the world. One who treats any one average, common, in equal, good or bad is ignorant and goes to sordid phase of life.

17. Whoever being accepts as such that, "I am the body only", is ignorant. Who thinks that the body is transitory, and that 'I am not the body 'but an original conscious soul and yet again that 'I am immortal, eternal conscious element, knows and admits as such, is learned virtuous.

18. Consciousness is the nature of soul of all the three times and it never moves away from the soul this very feature of consciousness is religion which is the nature of all living beings. Whoever living being, would have known and identified; that very being having experienced religion inwardly has to become wayfarer of final beatitude.

19. The way our mind does amorous dalliance in sin, worldly desires, passions, if with the same velocity of interest had the mind of time take interest in self form then the benefit of liberation would have occurred without any loss.

20. The mind, intellect, understanding or thought, and pride such conscience an aggregate of four matters is traced in every living being. Impurity of such a conscience (Antahkaran Chatushtaya) takes away the being towards downfall and purification of inner self-consciousness i.e.: 'Arantchatushtaya', makes path of self-progress praiseworthy.

21. While the mind accepts, intellect does the decision, thinking happens to be under reasoning, haughtiness dies then the accomplished happens to be obtained to his own perception form i.e.: - does self perception.

१७. संत किसी जाति-पांति से बंधे नहीं होते वे प्राणी मात्र के होते हैं, जैसे सूर्य सबके लिये प्रकाशित होता है, नढियाँ सबके लिये समान रूप से बहती हैं, इसी प्रकार संत भी सबके लिये समान रूप से उपकारी होते हैं।

१६. संसार में कोई भी प्राणी स्वभाव से छोटा बड़ा नहीं है, जो मनुष्य किसी को ऊंचा-नीचा, छोटा-बड़ा ढेखता है वह अज्ञानी है और वह नीच गति में जाता है।

१७. शरीर ही मैं हूँ ऐसा जो प्राणी मानता है वह अज्ञानी है, शरीर मैं नहीं हूँ, मैं एक शुद्ध चैतन्य आत्मा हूँ, शरीर क्षणभंगुर है, मैं चैतन्य तत्त्व अजर-अमर शाश्वत हूँ ऐसा जो जानता और मानता है वह ज्ञानी धर्मात्मा है।

१८. चैतन्यता आत्मा का त्रैकालिक स्वभाव है जिसका किसी भी काल में आत्मा से अभाव नहीं होता, वह चैतन्य लक्षण ही धर्म है जो प्राणी मात्र का स्वभाव है, जो जीव जाने पहिचाने वही धर्म का अंतर में अनुभव कर मोक्षमार्गी बनता है।

१९. जैसे हमारा मन पाप विषय कषायों में रमण करता है वैसे ही मन रुचि पूर्वक आत्म स्वरूप में रमण करे तो शीघ्र ही मोक्ष लाभ हो।

२०. मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह अंत:करण चतुष्टय प्रत्येक संज्ञी प्राणी में पाया जाता है। अंत:करण चतुष्टय की अशुद्धि जीव को पतन की ओर ले जाती है और अंत:करण की शुद्धि आत्मोन्नति का पथ प्रशस्त करती है।

२१. मन- मानता है, बुद्धि- निर्णय करती है, चित्त में- चिंतन होता है, अहंकार- मरता है तब साधक अपने स्वरूप अनुभव को प्राप्त होता है अर्थात् आत्मानुभूति करता है।

22. If you are an accomplisher, then never get to be considered your self a forlorn or worthless and poor. This has had to be accepted at all time that indeed you are original like divine supreme Spirit, a master of three universes. Having had such a faith the egotism would die making clear the road to get your desired destination.

23. What do you think? Such might not happen, Oh! what happens to be that very is exactly so as would take place yet again bothering about in vain why do you destroy your own strength? Have trust on predestination and live life with pleasure.

24. To regard the body "I" is indeed the greatest of all sins. In 'jain' system of thought it is called falsehood and under 'Vedic' system of thought it: is called illiterate-ness or deception, violence etc. All sins occur due to falsehood only, because the being happens to be engaged in collection of physical comforts due to desired intellect in body, then the knowledge of virtue of vice does not exist, and to earn sin is being happening.

25. The soul has got no name or caste, soul is nameless element, is belonging to the caste of consciousness. Worldly names and castes happen to be related to body. A man of wisdom should not be got involved for with the bondage of name and caste the good of soul does'nt happen to be.

26. Haughtiness is a wall biggest of all due to which vision of supreme spirit gloriously present in own body only is obscured. One who is pendulous under haughtiness, forgets the formless and one who is pendulous under formless, forgets the haughtiness because two swords are not accommodated with in one sheath.

२२. यदि तुम साधक हो तो कभी भी अपने को दीन-हीन दरिद्र मत मानो, हमेशा अपने आपको परमात्मा के सदृश शुद्ध, पवित्र तीन लोक का नाथ, परमात्मा हूँ यही स्वीकार करो, इस श्रद्धा विश्वास के बल पर मन मरेगा और तुम्हें अपनी मंजिल मिलेगी।

२३. क्या सोचते हो ? ऐसा न हो जाये, अरे ! जो होना है वही वैसा ही होगा फिर तुम चिंता करके व्यर्थ ही अपनी शक्ति नष्ट क्यों करते हो ? होनहार पर भरोसा करो और सानंद जीवन जिओ।

२४. शरीर को ''मैं'' मानना ही सबसे बड़ा पाप है। जैन दर्शन में इसे मिथ्यात्व और वैदिक दर्शन में इसे अविद्या कहा गया है, हिंसादि सभी पाप मिथ्यात्व के कारण ही होते हैं क्योंकि जीव, शरीर में इष्ट बुद्धि के कारण शारीरिक सुख सुविधाओं को जुटाने में संलग्न हो जाता है फिर पुण्य-पाप का बोध नहीं रहता और पाप उपार्जन होता रहता है।

२५. आत्मा की कोई जाति या नाम नहीं होता, आत्मा अनाम तत्त्व है, चैतन्य जाति वाला है। लैकिक नाम और जातियां देह से संबंधित होती हैं जिनमें विवेकवान को नहीं उलझना चाहिये क्योंकि नाम और जाति के बंधन से आत्मा का कल्याण नहीं होता है।

२६. अहंकार सबसे बड़ी दीवार है जिसके कारण घट में ही विराजमान परमात्मा के दर्शन नहीं होते, अहंकार में झूलने वाला निराकार को भूलता है और निराकार में झूलने वाला अहंकार को भूल जाता है क्योंकि एक म्यान में दो तलवारें नहीं समातीं।

27. The bird with two feathers flies under the sky, similarly to go under the sky two fins of knowledge and asceticism are needed to the devotee. Knowledge without asceticism, and asceticism without knowledge could never be completely workable.

28. The difference between the word 'chinta' and 'chita' consists only as to delete or add a dot (in Hindi language). The function of both the two is to burn and that in the way that the pyre (chita) burns the dead body and worry (chita) burns the living man. If you have to live a happy life then burn the pyre of worry.

29. Though you think usually "I will do this" "and this", "and this", "and this", but did you ever think that "I will die" "and die"? If you will continue to be engaged in, doing and doing this or that then when will you do preparation to leave the world for the end of age is coming nearer.

30. If you have to make love, make it with own form and with religion rather than with the world, body, wife, son and family. You will fall into the world well if you are infatuated with the worldly affairs. You may go across the world if you love religion.

31. If you have to covet then don't have it for worldly desires of the senses, wealth and, other objects because such an avarice is a game of misfortune, having covetousness to achieve original religion, have temptation of conduct to be maintained as per the voice of great souls, be liberated, and the greed of other objects of the world would be liberated from you. Leave running after 'other' and in this very consists your own good.

32. If you have to anger, then do it on your own blemishes. It is a weakness greatest of all to inflict anger on others. Anger is fire in which religion an identical form of precious jewel gets burnt.

२७. पक्षी दो पंखों से आकाश में उड़ता है, इसी प्रकार साधक को चैतन्यता के आकाश में बिहार करने के लिये बोध और वैराग्य के दो पंख चाहिये, बोध के बिना वैराग्य और वैराग्य के बिना बोध पूर्णत: कार्यकारी नहीं हो पाते।

२८. चिंता और चिता शब्द में बिंदी मात्र का अंतर है, कार्य दोनों का जलाने का है और वह इस प्रकार कि चिता मुर्दे को जलाती है और चिंता जीवित आदमी को जलाती है, सुखी जीवन जीना है तो चिंता की चिता जला दो।

२९. तुम यह तो सोचते हो कि मैं यह करूंगा, यह करूंगा, यह करुंगा लेकिन मैं मरूंगा, मैं मरूंगा ऐसा कभी विचार किया है ? करने करने में ही लगे रहोगे, आयु का अंत निकट आ रहा है, अपनी तैयारी कब करोगे ?

३०. मोह करना है तो संसार, शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार से मोह मत करो, आत्म स्वरूप से, धर्म से मोह करो, क्योंकि संसार से मोह करोगे तो भव कूप में पड़ोगे और धर्म से मोह करोगे तो भव सागर से पार हो जाओगे।

३१. लोभ करना है तो इन्द्रिय विषयों का, धनादि पर पदार्थों का मत करो क्योंकि यह लोभ दुर्गति का कारण है, शुद्ध धर्म को प्राप्त करने का लोभ करो, महापुरुषों की वाणी के अनुरूप आचरण करने का लोभ करो, इस लोभ से तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी और संसार के पर पदार्थों के लोभ की तुमसे मुक्ति हो जायेगी। पर का पीछा छोड़ो इसी में तुम्हारी भलाई है।

३२. क्रोध करना है तो अपने ही दुर्गुणों पर करो। दूसरों पर क्रोध करना सबसे बड़ी कमजोरी है। क्रोध अग्नि है जिसमें धर्म रूपी रत्न जल जाता है।

33. If you have to appreciate then do appreciation of infinite splendour of consciousness. Soul is the master of all three universes, do have great respect to such a divine existence. It is falsehood to behave haughtily of worldly objects, for all worldly objects are fleeting, soul is immortal element.

34. Deception, hypocrisy in fraudulent form is the cause of animal life and this illusion causes passion, pain and misfortune. If at all, fascination has to be done: do it for the infinite knowledge, infinite happiness, and infinite strength. Phantom form of knowable knowledge has always existed commenced, manage riches of this very sapient nature with which the soul's welfare would occur to be achieved.

35. To do self-introspection indeed is a supreme medicine of perfect health. Sensual passionate desires etc., several deformities in shape of diseases happen to be produced by mind owing which the soul having been sick of them suffers from pain of birth and death in the world, self-introspection is the only means to be completely healthy.

36. Idleness is a great foe of man the idle being living in the world could never be successful in worldly matters than how could such a man is succeeded in achievement of salvation hence be awake inwardly, get rid of idleness, be get engaged in own welfare, the worthiness of human birth exists only in this.

37. Generally, mistakes have been done by human beings. He would supposedly be not a man who does no error on the contrary should have been the God and the man who having had committed mistakes does not correct them he too would not be the human being for one who repeatedly makes mistake one after another, is called devil, one who does not understand the error, is called beast, one who after having done mistake, gets reformed, is called human being one who sat aside having had to do relinquishment of the mistake, is called the God.

३३. मान करना है तो चैतन्य के अनन्त वैभव का मान करो, आत्मा तीन लोक का नाथ है ऐसी भगवत सत्ता का बहुमान करो। संसार की वस्तुओं का अभिमान करना मिथ्या है क्योंकि संसारी सभी वस्तुएँ विनाशीक हैं, आत्मा अविनाशी तत्त्व है।

३४. छल, कपट रूप मायाचार तिर्यंच गति का कारण है, यह माया कषाय दुःख और दुर्गति को प्राप्त कराने वाली है। माया करना ही है तो अपने अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत बल की माया करो, ज्ञान की जानन रूप माया निरंतर प्रवर्त रही है, इसी ज्ञायक स्वभाव की माया संभालो इससे आत्मा का कल्याण हो जायेगा।

३५. आत्म निरीक्षण करना ही पूर्ण स्वास्थ्य की परम औषधि है। कामना, इच्छायें आदि अनेक विकार, रोग के रूप में मन के द्वारा उत्पन्न होते हैं जिनसे आत्मा अस्वस्थ्य होकर संसार में जन्म-मरण के दुःख भोगती है। आत्म निरीक्षण ही पूर्णतः निरोग होने का उपाय है।

३६. आलस्य मनुष्य का महान शत्रु है, आलसी मनुष्य संसार में रहता हुआ अपने सांसारिक कार्यों में सफल नहीं हो पाता, फिर आलसी व्यक्ति परमार्थ में किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकेगा ? अतः अंतर में जागो, आलस्य को त्यागो, निज हित में लागो इसी में मनुष्य जन्म की सार्थकता है।

३७. मनुष्य से प्रायः गल्तियां हो ही जाती हैं, जिस मनुष्य से गल्तियां न हों वह मनुष्य नहीं होगा बल्कि भगवान होगा और जो मनुष्य गल्तियां करके उन्हें सुधारे नहीं तो वह भी मनुष्य नहीं होगा क्योंकि -

जो गल्ती पर करे गल्ती उसे शैतान कहते हैं।
जो गल्ती न समझता हो उसे हैवान कहते हैं ॥
जो गल्ती कर सुधरता हो उसे इंसान कहते हैं।
जो गल्ती छोड़कर बैठा उसे भगवान कहते हैं ॥

38. To do sinful act of work intentionally with interest, the self strength gradually happens to be weak. This is opposite to the path of religion. Those doing such sins as, violence, falsehood, and theft and not to be celibate, to have superfluous holdings, sensual desires would not be competent to achieve liberation. Therefore the devotee in pursuit of his own self should have increased taste of own nature and should have relinquished interest in deformities.

39. In this world self-element is self-existent, omniscient and original. Self existence is self-power that verily is to be found by own-self, it's occurrence is not in the hands of others. Its occurrence depends upon own-self. The meaning of omniscient is that whatever had to be known or was worth knowing has all been learnt and the meaning of original is always pure, guiltless, as such is the self element.

40. The mind knows it's own weaknesses, and it reminds them at the time of progress hence the path of liberation gets blocked. The 'mann' or the mind is exactly a form of delusion-illusion, which is hallucination before the devotee. It is the duty of an awakened man that he should have not hidden own weakness from knowledge and be escaped from the rounds of mind then only welfare is possible.

41. I, the soul is equal to body, I the soul am identical to the God, I the soul am devoid of filth of 'karma' I the soul am characteristic of consciousness,'I' the soul am different to transitory existences, identical to knowledge, having had to do such thinking continuously the way of self-perception happens to be praiseworthy. Whoever being having done decision of own and other: - accepts form of substance, is the right viewer and truest valorous.

42. That which is untruth does not exist at any time and that which is everlasting does not lack to be to exist any time: i.e.:

३८. पाप रूप कार्य करने का मन में विचार करने से और रुचि पूर्वक उन भावों में रस लेने से आत्म बल क्षीण होता जाता है और साधना पथ से विपरीत धर्म मार्ग से भिन्न है लक्षण जिनका ऐसे पाप भावों हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह, कामना, वासना आदि में रस लेने से जीव धर्म मार्ग से च्युत हो जाता है इसलिये आत्मार्थी साधक को स्वभाव की रुचि बढ़ाना चाहिये और विभावों में रस बुद्धि का त्याग करना चाहिये।

३९. इस जगत में आत्म तत्त्व स्वयंभू सर्वज्ञ शुद्ध है। स्वयं भू आत्म सत्ता है जो स्वयं से ही है, उसका होना किसी दूसरे के हाथ में नहीं, उसका अस्तित्व स्वयं में ही निर्भर है। सर्वज्ञ का अर्थ है जो जानने योग्य था वह सब जान लिया और शुद्ध का अर्थ है सदा पवित्र निर्दोष ऐसा है आत्म तत्त्व।

४०. अपनी कमजोरियों को मन जानता है, वह उन्नति होने के समय उन्हीं कमजोरियों की याद दिलाता है और उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। मन मोह-माया का ही रूप है जो साधक को भ्रमित करता है। सजग व्यक्ति का कर्तव्य है कि ज्ञान से अपनी कमजोरी को न छिपाये और मन के चक्कर से बचे तब ही कल्याण संभव है।

४१. मैं आत्मा शरीर के बराबर हूँ, मैं आत्मा ब्रह्म स्वरूपी हूँ, मैं आत्मा कर्म मलों से रहित हूँ, मैं आत्मा चैतन्य लक्षण वाला हूँ, मैं आत्मा अनित्य भावों से भिन्न ज्ञान स्वरूपी हूँ ऐसा निरंतर चिंतन करने से आत्मानुभूति का मार्ग प्रशस्त होता है, जो जीव स्व-पर का यथार्थ निर्णय कर वस्तु स्वरूप स्वीकार करता है वह सम्यक्दृष्टि सच्चा पुरुषार्थी है।

४२. जो ''असत्'' है उसका कभी अस्तित्व नहीं है और जो ''सत्'' है उसका कभी अभाव नहीं है अर्थात् वह सदा शाश्वत स्वभाव है। यह सत् ही

that is always everlasting nature. This eternal is verily Supreme spirit, Supreme form of the God. Strictly speaking, obtainment of this truth is not only principal in human life on the contrary is the only aim. For obtainment of the form of truthful original conscious own existence, only this human form of birth has been received.

43. That man on having got the human frame of body does not make real use of it and always remains engaged in only to earn and enjoy experiences of pleasure or pain, his human birth has had to go in vain, not only does it go in vain, on the contrary wisdom of the man gets covered with the passions of worldly desires and he having had to be engaged in several sinful work for obtainment of their enjoyments, moves on the way of misfortune.

44. Sensuous enjoyments are temporary and are a mine of misfortunes causing pain infinitely. Therefore to have to gain-Supreme religion is indeed the only duty. This life would be successful truly by worship and devotion of true original spirit form. Having had to understand worldly desires and their enjoyments to be the aim of this life, to enjoy life in only to obtain them is as a matter of fact equivalent to poison instead of nectar.

45. If discretion of eternal-non eternal got awakened in this human birth form, got known own immortal blissful form, then the life would indeed become blessed because usefulness of human life altogether depends on obtainment of truth. And there exists a great loss if during this birth one did not know the conscious form.

46. Resolute men keep friendly terms with all beings and know the spirit to be the form of Supreme Spirit. Those enlightened on having relinquished body gain immortality, i.e.: having had to be free from the ties of this body happen to be in nectar form, the Supreme Spirit.

परमात्मा परम ब्रह्म स्वरूप है। वस्तुत: इस सत् की उपलब्धि मानव जीवन का प्रधान ही नहीं बल्कि एक मात्र लक्ष्य है। सत् स्वरूप शुद्ध चैतन्य स्वभाव की प्राप्ति के लिए ही यह मनुष्य भव मिला है।

४३. जो मनुष्य, मानव देह प्राप्त करके इसका वास्तविक लाभ नहीं उठाता और पशु या पिशाचवत् भोगों के उपार्जन और भोग भोगने में ही लगा रहता है उसका मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जाता है, केवल व्यर्थ ही नहीं जाता बल्कि विषयों की भोग कामना से मनुष्य का विवेक ढक जाता है और वह भोगों की प्राप्ति के लिये अनेकों पाप कर्मों में प्रवृत्त होकर दुर्गति की राह बना लेता है।

४४. भोग क्षण मात्र के लिये सुख रूप और अनन्त काल के लिये दु:ख देने वाले अनर्थों की खान हैं इसलिए परम धर्म की प्राप्ति करना ही एक मात्र कर्तव्य है। सत्य स्वरूप शुद्धात्मा की साधना आराधना से ही यह जन्म सफल होगा, विषय भोगों को इस जीवन का लक्ष्य समझकर उन्हीं को प्राप्त करने में जीवन लगाना तो अमृत के बढ़ले में जहर लेना है।

४५. यदि इस मनुष्य पर्याय में सत्-असत् का विवेक जाग्रत कर लिया, अपने चिदानन्द स्वरूप को जान लिया तो जीवन धन्य हो जायेगा, क्योंकि सत्य की उपलब्धि से ही मानव जीवन की सार्थकता है और यदि इस जन्म में चैतन्य स्वरूप को नहीं जाना तो महान हानि है।

४६. धीर पुरुष समस्त जीवों में मैत्रीभाव रखते हैं और आत्मा को परमात्म स्वरूप समझते हैं, वे ज्ञानी देह का त्याग करके अमरत्व को प्राप्त करते हैं अर्थात् इस शरीर के बंधन से मुक्त होकर अमृत स्वरूप परमात्मा हो जाते हैं।

47. Existence is called that which is everlasting, whose absence never occurs, Who is eternal true fully blissful, who is equal and harmonious in all three times, past, present and future and under all conditions, is a form of bliss, that very is knower shelter, illuminator of all and basis of religion. To whom the 'shashtras' etc often having said Appa so paramappa: - make reference that is the only consciousness, truly blissful form, that very true form is, 'I am my-self.

48. The way without clothings, ornaments are burden only, the same way without asceticism thought of eternal spirit is useless, for a deceased body offering of several kinds of food is of no use, without being faithful to own spirit, devotion-worship is not useful, without self handsome body is useless, in the same manner without religion entire life is solely useless.

49. This knowledge and science is the king of all arts, support among all arts extremely sacred, exceedingly supreme, giver of immediate return, everlasting form of supreme, indestructible. The meaning of 'Akshar' is that which never gets in the act of falling of or which is never destroyed as is said in Sanskrit language "Na Chharati iti aksharaha," that very is Akshar'. Such a completely full with knowledge original own self I myself am who is being residing in this temple of body.

50. Meaning of faith is to believe in true deity the supreme spirit, virtuous teacher and virtuous 'shashtra', that respectfully in the manner of a visible form, has to happen by dint of purification of inner self. Purification of inner-self has had to occur by dint of realization of own self-such realization has had to be to exist by dint of trust of belief. In this way these all are complimentary to each other, are supporters, therefore after having had done faith and trust on the voices or words of the Teerthankara, we should have to get connected ourselves with realization of own-self without any loss of time.

४७. ''सत्'' उसे कहते हैं जो सदा है, जिसका कभी अभाव नहीं होता, जो नित्य सत्य चिदानन्दमयी है, जो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में और समस्त अवस्थाओं में सम एवं एकरूप है, आनन्द स्वरूप है वही सबका ज्ञाता, आश्रय, प्रकाशक और धर्म का आधार है। शास्त्र जिसे ''अप्पा सो परमप्पा'' आदि कहकर जिसकी ओर संकेत करते हैं जो एक मात्र चैतन्य घन सच्चिदानन्द स्वरूप है वही सत्स्वरूप, मैं स्वयं हूँ।

४८. जिस प्रकार कपड़ों के बिना गहने बोझ मात्र हैं, वैराग्य के बिना ब्रह्म विचार व्यर्थ है, रोगी शरीर के लिये भांति-भांति के भोग व्यर्थ हैं, आत्म श्रद्धान के बिना तप-जप कार्यकारी नहीं हैं, जीव के बिना सुंदर शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार धर्म के बिना सारा जीवन ही व्यर्थ है।

४९. यह ज्ञान विज्ञान सब विद्याओं का राजा है, सब कलाओं में श्रेष्ठ है, अत्यंत पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फल देने वाला, अविनाशी परम अक्षर स्वरूप है। अक्षर का अर्थ है ''न क्षरति इति अक्षर:'' जिसका कभी क्षरण या क्षय नहीं होता है वही अक्षर है ऐसा ज्ञान विज्ञान मयी शुद्धात्मा मैं स्वयं हूँ जो इस देह देवालय में वास कर रहा हूँ।

५०. श्रद्धा का अर्थ है - सच्चे देव-परमात्मा, सदगुरु और सत्शास्त्र में आदर पूर्वक प्रत्यक्ष की भांति विश्वास करना, यह विश्वास होता है अत: करण की शुद्धि से। अंत:करण की शुद्धि होती है - साधना से, और साधन होता है - विश्वास से। इस प्रकार यह सभी एक दूसरे के पूरक हैं, सहायक हैं। इसलिये जिन वचनों पर श्रद्धा और विश्वास करके हमें अविलम्ब आत्म हित के साधन में लग जाना चाहिये।

51. Body is transient, luxury is not everlasting, death is reaching close to us every day, when it might come, can not be said; therefore with entire force of energy get annexed to worship or religion.

52. Human birth form has been received on account of meritorious great virtuous deed, do not waste this opportunity in vain.

53. That human body which is rare even to the deities, they too even yearn to obtain that, that opportunity has been obtained by you easily, therefore now don't miss, put stake so that you would be relieved from stress.

54. Whatever work or behavior that you desire from others be done unto you do it similarly with others, and the work or behaviour that you do not expect to be done unto you, the same should have been avoided to be done by you with others. This itself is the gist of religion which is fit to be performed by all men.

55. Never do wrong to others nor have such inclination. By dint of your liking or doing none would be harmed; good or bad of every being would be present in his own self form of'Karmas' and would take place in form of their fruition,, then only good or bad would occur to them, in spite of that no sooner you desired ill of others your loss infact almost got occurred indisputably.

56. That very is sin with which own and other's transformation would happen to be inimical and with which condition of own and other happens to be worthy that very is virtue. It may be understood in the manner as well, that which do impurity of soul, make it filthy is sin. And that which becomes a means for the soul to be pure of original is virtue. Sin is a cause of pain and virtue brings pleasure in the world.

५१. शरीर अनित्य है, वैभव शाश्वत नहीं है, मृत्यु दिनों दिन निकट आ रही है, वह कब आ जाये इसका कोई भरोसा नहीं है इसलिये पुरुषार्थ पूर्वक धर्म की आराधना में संलग्न हो जाओ।

५२. मनुष्य जन्म महान पुण्य के योग से प्राप्त हुआ है, इस अवसर को व्यर्थ न गंवाओ।

५३. जो मानव शरीर देवताओं के लिये भी दुर्लभ है, देवता भी जिसको प्राप्त करने के लिए तरसते हैं वह अवसर तुम्हें सहज में प्राप्त हो गया है इसलिए अब चूको मत, दांव लगाओ तो बेड़ा पार हो जायेगा।

५४. जो जो कार्य या व्यवहार तुम दूसरों से अपने लिये चाहते हो, वैसा ही तुम दूसरों के साथ करो और जैसा कार्य या व्यवहार तुम दूसरों से अपने लिये नहीं चाहते वैसा तुम भी दूसरों के प्रति मत करो यही धर्म का सार है जो मानव मात्र के लिये आचरणीय है।

५५. दूसरों का कभी बुरा मत करो और न बुरा चाहो। तुम्हारे चाहने या करने से किसी का बुरा नहीं होगा, प्रत्येक जीव का भला-बुरा उसके अपने कर्म, कारण रूप से विद्यमान होंगे और जो फलदानोन्मुख (उदय रूप) होंगे, तभी उसका भला-बुरा होगा परन्तु किसी का बुरा चाहते ही तुम्हारा बुरा तो निश्चित रूप से हो ही गया।

५६. जिससे अपना तथा दूसरों का परिणाम में अहित होता हो वही पाप है और जिससे अपना तथा दूसरों का हित होता हो वही पुण्य है। इसे इस तरह भी समझा जा सकता है कि जो आत्मा को अपवित्र मलिन करे वह पाप है और जो आत्मा को पवित्र होने में साधन बने वह पुण्य है। संसार में पाप दुःख का कारण है और पुण्य सुख का कारण है।

57. One, who desires and does harm to others, never gets favorably benefited. Our good or bad happens to depend on fruition of our own 'Karmas' no one can do any thing into this, if anybody endeavours to do as such, he sows seed infact for his own tragic condition, and one who has done work of disfavor unto his own self, he is fit for pity but not for malice.

58. One who keeps hope of being happy with any position, condition, living creature, object or substance etc., he can never be happy, he will always remain depressed, as a result would remain painful at all times. Substantially happiness does not consist in any other object, sea of happiness is being fluctuating within the inner consciousness, might we see in then would easily be got happy. Where happiness almost does not exit, therein by searching it even it is not going to be found ever. Happiness exists in own nature, search it there only, this very is the true means to be happy.

59. Pleasure or pain does not exit under any substance or position either any one causes pleasure or pain. Under conformity of mind pleasure exists and under contrariety exists pain. Might we construct 'knowledge of sight' and assume own selves unconnected merely wise to look at, might we accept it than under all circumstances recognition of conformity and contrariety would have to be got finished. Moreover wakefulness of equality in existence would happen to occur; afterwards far away from pleasure-pain we could gain bliss.

60. Luck or destiny does not cause downfall and sin. The being having had done dishonor to own discretion, having been under the command of sensual desires does sinful conduct then only down fall happens, 'karma' luck or destiny, infact are merely motives.

५७. दूसरों का अहित चाहने और करने वाले का कभी हित नहीं होता और दूसरों का हित चाहने और करने वाले का कभी अहित नहीं होता। हमारा अहित या नुकसान हमारे ही कर्म के उदय से होता है, दूसरा उसमें कुछ भी नहीं कर सकता, यदि कोई वैसी चेष्टा करता है तो वह अपने लिये ही बुराई का बीज बोता है और जो स्वयं अपने लिये अहितकारी कार्य करता है, वह दया का पात्र है, द्वेष का पात्र नहीं।

५८. किसी भी परिस्थिति, अवस्था, प्राणी, पदार्थ या किसी वस्तु आदि से जो जीव सुखी होने की आशा रखता है, वह कभी भी सुखी नहीं हो सकता, वह सदा ही निराश रहेगा, फलस्वरूप दु:खी रहेगा। वस्तुत: सुख किसी बाह्य पदार्थ में नहीं है, सुख का सागर अंतस् में लहरा रहा है अंतर में देखें तो सहज सुखी हो जायें। जहां सुख है ही नहीं वहां ढूंढने से तो वह कभी मिलने वाला नहीं है। सुख अपने स्वभाव में है वहीं ढूंढो यही सुखी होने का सच्चा उपाय है।

५९. सुख-दु:ख किसी वस्तु या स्थिति में नहीं है और न ही कोई सुख-दु:ख देता है। मन की अनुकूलता में सुख है और प्रतिकूलता में दु:ख है। यदि हम ज्ञान की दृष्टि बना लें और अपने को निर्लिप्त मात्र ज्ञाता दृष्टा मान लें, स्वीकार कर लें तो सभी परिस्थितियों में अनुकूलता-प्रतिकूलता की मान्यता समाप्त हो जायेगी और समता भाव का जागरण हो जायेगा फिर सुख-दु:ख से परे हम आनंद को प्राप्त कर सकेंगे।

६०. पतन और पाप, भाग्य और प्रारब्ध नहीं कराता। जीव अपने विवेक का अनादर करके कामना चाहना के वशीभूत होकर पापाचरण करता है तभी पतन होता है। कर्म, भाग्य या प्रारब्ध तो निमित्त मात्र है।

61. The reason of all pains is false pride, the feeling of egoism of belonging, the way you assume egoticism connected with senseless objects similarly if you do have to connect that sense of belonging in own eternal, indestructible, true, everlasting, blissful solid self form that, very original consciousness is Indeed "'I my-self am" then only by dint of this faith fascination from objects would get rid of.

62· **Sins which duly occur from mind or heart :-**

To keep melancholy in heart, to have to keep cruelty in mind to have to do futile thinking; to keep in mind thought of impertinence and have impure intentions, are the sins bred by mind by heart, which causes sin to be acquired and gets one sunk under pains. To escape from them it essential to keep pleasure of mind, to hold politeness, gentility, having had to remain silent, being quiet, to have to recite and think over qualities of supreme spirit and own-self form, to keep control of mind and to keep control over the volatility of the mind and to keep care of own sentiments, in this way should have to be saved of own-self from the sins occurring from the mind.

63. **Sins occurring throuah speech or words :**

To speak such a language through which perplexity be caused to one who hears it, that might be untrue, which might be bitter, unworthy or unfriendly, disdainful and unlovable, i.e.; united with condemnation of others, full of sin uninviting; along with through such speech not to recite qualities of supreme spirit, to have to do useless argument, quarrel with others; these are the sins that occur through speech or voice, by dint of which scramble, enmity, unpleasantness happens to be in this very life and cordial intimate relations are destroyed; what misery takes place in another birth is quite unspeakable.

६१. समस्त क्लेशों का कारण अहंकार, ममकार है, जिस तरह संयोगी जड़ वस्तुओं में अहंपना मानते हो उसी प्रकार अपने अनाद्यनिधन सत्य शाश्वत चिद्घानन्द घन आत्म स्वरूप में अहंता करो कि वही शुद्ध चैतन्य ही मैं हूँ इसी श्रद्धा के बल से संयोगी पदार्थों से ममत्व छूटेगा।

६२. **मन से होने वाले पाप –**

मन में विषाद रखना, मन में निर्दयता होना, मन से व्यर्थ चिन्तन करना, मन में उच्छृंखलता के विचार रखना और अशुद्ध भाव करना यह मन से होने वाले पाप हैं, जो पाप का अर्जन कराने वाले और दु:खों में डुबा देने वाले हैं। इनसे बचने के लिए हमेशा मन में प्रसन्नता रखना, सौम्यता धारण करना, मौन, शांत रहकर परमात्मा के गुणों का और अपने आत्म स्वरूप का चिंतन–मनन करना, मन को वश में रखना और अपने भावों की संभाल रखना, इस प्रकार मन से होने वाले पापों से अपने को बचाना चाहिये।

६३. **वचन से होने वाले पाप –**

ऐसी वाणी बोलना जिससे सुनने वाले को उद्वेग हो, जो असत्य हो, कटुक हो, अहित करने वाली हो, गर्हित, सावद्य और अप्रिय अर्थात् दूसरों की निंदा युक्त, पाप पूर्ण हो; तथा वाणी से परमात्मा के गुणों का गान नहीं करना, व्यर्थ विवाद करना यह वाणी से होने वाले पाप हैं जिनसे इसी जन्म में ईर्ष्या, बैर, कलह, बुराई पैदा हो जाती है और प्रेम पूर्ण आपसी संबंध मिट जाते हैं, परभव में जो दुर्गति होती है वह तो अकथनीय है। इन पापों से बचने के लिये – वाणी से ऐसे वचन न बोलें जो उद्वेग पैदा करें, सत्य भाषण, मधुर और हितकर वचन बोलें, किसी की निंदा न करें, पाप करने की प्रेरणा न दें, प्रिय वचन बोलें और व्यर्थ ही किसी से विसंवाद न करें, इन उपायों से वाणी से होने वाले पापों से बचना चाहिये।

To escape from these sins one should have not spoken such words by that own speech which might produce agitation. One should have not spoken such words by speech that might produce agitation. One should have to speak true speech, soft and favorable words, never to condemn any- one and seduce to do sin, to utter agreeable remark and avoid quarrel with anybody uselessly. With these means one should save him self firom sins emanating out of voice.

64. **Sins occurring form body :**

These are enumerated and discussed as under : - Not to do services of elders and adorable men, to have to be remained profane, to become distorted under haughtiness, to destroy celibacy, to hurt or to convey affliction to any one, to do inauspicious work, these are the sins to be occurred by the body, which reduce beings fit for disrepute and sorrows in this very birth and in the life of the other world infact in suffering with the pains of sordid lives of inferno almost become the causes. To escape from these sins observe the works of religion everyday, to perform worship, reading of religious literature etc., to hold purity, to remain humble and simple, to do observance of celibacy, to make life full with non-violence, to observe auspicious conduct of cessation, religious regulation, restraint of passions etc., and in this way remaining far away from the sins occurring through body, the soul should have to be got developed on the path of sacredness.

65. Don't ever harbour feeling of any obligation by doing something to others, even in exchange gratitude should to be had nor been anticipated and neither get it publicised, having understood that the substance belonging to the other has been duly returned back to him only, forget it. In particular this means that if any good had happened to any one by you,

६४. **शरीर से होने वाले पाप –**

बड़े और पूज्य पुरुषों की सेवा न करना, अपवित्र बने रहना, अहंकार में अकड़े रहना, ब्रह्मचर्य का नाश करना, किसी को चोट या पीड़ा पहुंचाना, अशुभ कार्य करना यह शरीर से होने वाले पाप हैं जो इसी जन्म में जीव को अपयश और दु:खों का पात्र बना देते हैं; परभव में तो नरक आदि दुर्गतियों के दु:ख भोगने में कारण बनते ही हैं। इन पापों से बचने के लिये शरीर से प्रतिदिन धर्म कार्यों का पालन, पूजा पाठ आदि करना, शुचिता को धारण करना, विनम्र और सहज रहना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, अहिंसा मय जीवन बनाना, यम नियम संयम आदि शुभ आचरण का पालन करना, इस प्रकार शरीर से होने वाले पापों से दूर रहते हुए आत्मा को पवित्रता के मार्ग में उन्नत करना चाहिये।

६५. किसी को कुछ देकर अहसान की भावना तो करो ही मत बल्कि बदले में उससे कृतज्ञता भी मत चाहो और न प्रचार करो, उसी की वस्तु उसे दी गई है यह समझकर इसे भूल जाओ। विशेष यह कि अपने द्वारा किसी का कभी कुछ हित हुआ हो उसे भूल जाओ, दूसरे के द्वारा अपना कभी अहित हुआ हो उसे भूल जाओ। दूसरे के द्वारा अपना कुछ हित हुआ हो उसे याद रखना चाहिये और अपने द्वारा कभी किसी का अहित हुआ हो उसे याद रखना चाहिये।

forget it. If any wrong would have ever occurred by any one else detrimental to our own interest, it should be forgotten. If our own good might have taken place through the other one that has to be kept remembered and if by our selves ever ill of other's took place that too should have been kept remembered.

66. Thirst of wealth and sensual enjoyments are the causes of the world-bondage of the being, with which he can never be satisfied. A contented person only remains happy in the world, the insatiate man continues to remain sorrowful. With the obtainment of in-sentient enjoyments, the desire could have never be quieted, on the contrary it happens to be increased in the same way just as to pour in butter oil or 'Ghee' in fueI the fire goes up more and more ablaze.

67. Who is contented, is free from all wishes along with does merriment among the soul singularly obtains pleasure of the kind that to those who long for enjoyments and go after the desire of wealth, would never be got available.

68. Having had to come under swoop down of illusion even a good many distinguished greatman get bewildered howsoever they might have been pretending courageous initially yet the assault of calamity gets there deviated from being sober. By and by having been honored, their habit gets so spoiled that no sooner insult occurred they could have not kept themselves within the reins of control. Having been brooding over time to time of ennity they flow in so much under it's current that they get rendered unable to manage themselves. Barrage of forbearance gets broken. Their working style too falls short of humanity. These are the traits of infernal condition and under the round of illusion or ignorance being got involved in whirlpool of deception the being has had to become an easy prey to such tendency of fall.

६६. धन की तृष्णा और भोगों की लिप्सा ही जीव के संसार बंधन की कारण है, जीव इनसे कभी तृप्त नहीं हो सकता। संसार में संतोष भाव वाला व्यक्ति ही सुखी रहता है, असंतोषी व्यक्ति दु:खी बना रहता है। भोगों की प्राप्ति से भोग इच्छा शांत नहीं हो सकती बल्कि ईंधन में घी डालने से जैसे अग्नि अधिकाधिक बढ़ती है उसी प्रकार भोगेच्छा में वृद्धि होती है।

६७. जो संतुष्ट है, निष्काम है तथा आत्मा में ही रमण करता है उसे जो सुख मिलता है, वैसा सुख काम भोग की लालसा में और धन की इच्छा से इधर-उधर दौड़ने वालों को कभी नहीं मिल सकता।

६८. माया के झपट्टे में आकर बड़े-बड़े लोग भी चकरा जाते हैं, पहले चाहे जितने धैर्यशील बनते रहे हों, विपत्ति की चोट उन्हें विचलित कर देती है। सम्मान पाते-पाते आदत इतनी बिगड़ जाती है कि अपमान होते ही वे अपने को काबू में नहीं रख पाते । शत्रुता का चिन्तन करते-करते वे उसके प्रवाह में इतने बह जाते हैं कि अपने आपको संभाल नहीं पाते। धैर्य का बांध टूट जाता है। उनकी कार्यशैली भी मानवीयता से गिर जाती है यह आसुरी वृत्ति के लक्षण हैं और माया के चक्र में, माया के भंवर में उलझा हुआ जीव इस तरह की पतन रूप प्रवृत्ति का शिकार बन जाता है।

69. Affection is noose whereas equality is thrown, the being gets tied with love and happens to be released by equalness, the existence of avarice, that means whatever it is, is-mine, such assumption is merely bondage. By nature exceptional, the unconscious objects could have never been fully with soul and to make in them relation of own-self existence of intimacy, is indeed a cause of pain.

70. Anything is mine, such assumption itself is verily pain, nothing is mine, and such an assumption is verily pleasure. Due to affection the being remains to be dolorous and equalness is always a form of pleasure; therefore having had to leave existence of attachment, should have to be deliberated and reflect upon disinterested existence, this very implies the gist of life.

71. Times immemorial have elapsed of this being having had to travel through the world and whatsoever body as well it retained in that particular body had the pride of existence of "my-self' i.e.: in every birth order assumed that very body to be my self: But did not know own-self conscious form; this very ignorance is the home of great pains.

72. Although this ignorant being assumes these connecting body etc., senseless objects to be his own yet none of the unconscious object till to day has ever considered it-self to be the beings own; even having been knowing, understanding this, 'O' 'Atman' you are being made unknown, this very is a great wonder.

73. To have to occur real knowledge of own self-form is itself the religion. To have to occur perception of own self form is verily rightfaith; this is the basis of religion. If you do turn sight towards own then the sight of infinite form of bliss own supreme spirit contended into own self only, would have seen the religion does not rest on any where in external, and through searching it in external, it is not to be found as well.

६९. ममता फांसी है, समता सिंहासन है, जीव ममता से बंधता है और समता से मुक्त होता है। ममत्व भाव अर्थात् कुछ भी मेरा है ऐसा मानना ही बंधन है, स्वभाव से विलक्षण अचैतन्य, जड़ पदार्थ आत्मामय नहीं हो सकते और उनमें ''मम'' भाव से अपनत्व का संबंध बनाना ही दु:ख का कारण है।

७०. कुछ भी अपना है ऐसा मानना ही दु:ख है, कुछ भी अपना नहीं है ऐसा श्रद्धान ही सुख है। ममता से जीव दु:खी रहता है और समता सदा ही सुख स्वरूप है इसलिये ममत्व भाव छोड़कर निर्ममत्व भाव का विचार चिंतन मनन करना चाहिये इसी में जीवन का सार है।

७१. संसार परिभ्रमण करते हुए इस जीव को अनादि काल बीत गया और जिस-जिस शरीर को भी इसने धारण किया उस-उस शरीर में ही ''मैं'' का अहं भाव किया अर्थात् हर पर्याय में उस शरीर को ही ''मैं'' माना किन्तु अपने चैतन्य स्वरूप को नहीं जाना यही अज्ञान महान दु:खों का घर है।

७२. यह अज्ञानी जीव शरीरादि संयोगी जड़ पदार्थों को तो अपने मानता है किन्तु कोई भी अचेतन पदार्थ ने आज तक इस जीव को अपना नहीं माना, यह जानते समझते हुए भी हे आत्मन् ! तुम अनजान बन रहे हो यही बड़ा आश्चर्य है।

७३. अपने आत्म स्वरूप का सच्चा बोध होना ही धर्म है, आत्म स्वरूप की अनुभूति होना ही सम्यक्दर्शन है यही धर्म का मूल है। दृष्टि अपनी ओर करो तो अपने में ही निहित अनंत आनन्द स्वरूप निज परमात्मा का दर्शन हो जायेगा। धर्म कहीं बाहर नहीं है और बाहर ढूंढने से कभी मिलने वाला भी नहीं है।

74. Occurrence of the sight intentive on the other is verily irreligious and cause of the world. On account of having had intellect of desiredness in the other objects since times immemnorial, self-perception, right faith is not being possible to be happening, whereas the right faith by it-self is original own-self, do have the sight turned towards own-self, this very is means to obtain-religion.

75. The being owing to his false, fully illusory recognitions remains to be painful, delusory and agitated. A chance has been received in shape of human birth to understand own eternal form, might it be understood identified then absence of infinitely transportation of world life would occur and travelling of the world would come to an end. On having had belief of own form of knowledge being afar to ignorance, false recognition, illusions, pains would collapse.

76. To have precise faithfulness of the form of substance, to treat something exactly so the way it stands on to be, is precise faith this very is called right - faith or sight of supreme spirit. With the help sharp chisel like intellect, discretion between self and non-self, sentient and in sentient, be caused to be got expressed, know own self nature once for all having been doubtless, this very is worthy. Determinations and doubts are the existences of mind, not the nature of soul, therefore with the thoughts of intellect beyond the determinations and doubts of the mind, under all conditions, positions that which is mere knower that very is 'I' am, such a self perception is verily a means of welfare.

77. Fears are bred through doubts, doubtful man remains always frightful and doubtless man remains always fright free. Fear is pain indeed, fearlessness is itself pleasure.

७४. दृष्टि का परोन्मुखी होना ही अधर्म और संसार का कारण है। अनादिकाल से पर पदार्थों में इष्टता की बुद्धि होने के कारण आत्मदर्शन, सम्यक्दर्शन नहीं हो पा रहा है जबकि सम्यक्दर्शन स्वयं ही शुद्धात्मा है, अपनी ओर दृष्टि करो यही धर्म को प्राप्त करने का उपाय है।

७५. जीव अपनी मिथ्या, भ्रम पूर्ण मान्यताओं के कारण दु:खी, भ्रमित और परेशान रहता है। अपने सत्स्वरूप को समझने का मनुष्य जन्म में मौका मिला है, अपने स्वभाव को जान ले, पहिचान ले तो अनादि कालीन भव भ्रमण का अभाव हो जायेगा और संसार की यात्रा समाप्त हो जायेगी। अज्ञान से परे अपने ज्ञान स्वरूप की प्रतीति होने पर मिथ्या मान्यताओं, भ्रम और दु:खों का अवसान होगा।

७६. वस्तु स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान करना, जो जैसा है उसे वैसा ही मानना यथार्थ श्रद्धान है इसी को सम्यक्दर्शन या परमात्म दर्शन कहते हैं। बुद्धि रूपी पैनी छैनी से आत्मा और अनात्मा का बोध प्रगटा लो, निर्विकल्प होकर एक बार अपने स्वभाव को जान लो यही प्रयोजनीय है, संकल्प-विकल्प मन के भाव हैं आत्मा का स्वभाव नहीं, इसलिये बुद्धि के विचारों से, मन के संकल्प-विकल्पों से परे सर्व को सर्व अवस्थाओं में, दशाओं में जो मात्र जानने वाला है वही मैं हूँ ऐसी स्वानुभूति ही कल्याण का उपाय है।

७७. शंकाओं से भय पैदा होते हैं, शंकित व्यक्ति हमेशा भयभीत रहता है और नि:शंकित व्यक्ति सदैव निर्भय रहता है। भय ही दु:ख है, निर्भयता ही सुख है।

78. Whether I am body or soul, with such doubt only the decision of form does not happen to be, in lack of one resolution under the control of doubtful sentiment one has to go hard with, merely in vain. Gurudeo Taaran Swami is the true teacher, who is being awakening, devotion to him on this account would happen to be genuine only when having had to determine own form being got free from doubt.

79. Through true devotion of self-form and eternal effort, the soul could manifest supreme dignity. Having had to win over the deformed existences of delusion, illusion, fascination and malice-enmity etc., any man can become supreme spirit from the spirit. For this reason unavoidably it is necessary that the being had to see his own self form to be eternal, original, indestructible away from deformities of all malice along with away from the 'Karmas' of either virtue or vice etc. which means, should have to do perception of own original soul. By dint of this means any man could have obtained infinite bliss of salvation.

80. To accept truth itself is our supreme duty. The sight of true form of original self is the only means to make life blissful.

81. Self-perception happens to be in clean mind, the way in a dirty mirror man's face does not appear to be seen clear, in the same way in the mind dirty with malice and sins we can not have sight of original soul, malice and sapient nature are two different substances, knowledge knows and malice happens to come in to be known knowledge is knower, malice is knowable, separateness to be glittered from the knowable is verily called to be knowing sapient nature.

82. The world is a place of fear and afflictions the way clay comes out of the mine of clay, gold out of gold mine, diamond out of diamond mine, similarly fiom the mine of the world comes out sorrow; feeling of asceticism on having got

७८. मैं शरीर हूँ या आत्मा हूँ, ऐसी शंका के कारण ही स्वरूप का निर्णय नहीं होता, एक निश्चय के अभाव में शंकित भाव वश व्यर्थ ही दु:ख उठाना पड़ रहा है। गुरुदेव तारण स्वामी सच्चे गुरु हैं, जो जगा रहे हैं, उनकी श्रद्धा भी सच्ची तभी होगी जब स्वरूप का निश्चय करके निशंक हो जाओ।

७९. आत्म स्वरूप की सच्ची श्रद्धा और सत्पुरुषार्थ के द्वारा आत्मा, परमात्म पद को प्रगट कर सकता है। मोह माया, ममता एवं राग-द्वेष आदि विकारी भावों पर विजय प्राप्त कर कोई भी मनुष्य आत्मा से परमात्मा हो सकता है। इसके लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक यह है कि वह जीव अपने आत्म स्वरूप को समस्त रागादि विभावों से तथा पुण्य-पाप आदि कर्मों से परे अपने आत्म स्वरूप को ध्रुव शुद्ध अविनाशी देखे अर्थात् अपने शुद्धात्मा की अनुभूति करे इस उपाय से कोई भी मनुष्य मुक्ति के अनंत सुख को प्राप्त कर सकता है।

८०. सत्य को स्वीकार करना ही हमारा परम कर्तव्य है, सत्य स्वरूप शुद्धात्मा का दर्शन जीवन को मंगलमय बनाने का एकमात्र उपाय है।

८१. आत्म दर्शन निर्मल चित्त में होता है, जिस प्रकार मलिन दर्पण में आदमी को अपना चेहरा दिखाई नहीं देता उसी प्रकार राग से और पापों से मलिन चित्त में हमें शुद्धात्मा का दर्शन नहीं हो सकता। राग और ज्ञान स्वभाव दो अलग-अलग वस्तुएं हैं, ज्ञान जानता है और राग जानने में आता है। ज्ञान ज्ञायक है, राग ज्ञेय है, ज्ञेय से भिन्नत्व भासित होना ही ज्ञान स्वभाव को जानना कहलाता है।

८२. संसार भय और दु:खों का स्थान है, जिस प्रकार मिट्टी की खदान से मिट्टी निकलती है, सोने की खदान से सोना, हीरे की खदान से हीरा निकलता है उसी प्रकार संसार की खान से दु:ख निकलता है। संसार से वैराग्य भाव जाग्रत होने पर ही संसार के स्वरूप को यथार्थतया

awakened fiom the world only the form of the world could be known precisely, having had attachment with the world would not render it possible to have understood form of the world. Those beings who think of asceticism through the world they understand the world to be 'Anrat' means transitory, untrue, and shelterless support of sorrows.

83. Whoever being's tendency happens to be towards worldly objects, his intellect is inclined of that very side, worries tantamount to that only occupy the mind and haughtiness get increased due to which the being suffers with pain of the world-life and of the other world. Contrary to this whoever being's leaning happens to be towards religion his intellect has commencement to have to do the decision in between eternal and non eternal, thinking happens to be in mind and haughtiness gets broken by dint of which has had to gain true happiness and happens to be free from distresses of the world.

84. The man is seized of the diseases of mental tension at present in worldly life, to be got rid of this tension the man is apt to he addicted to take support of evil habit and intoxication etc., but in turn with the help of these formal addictions as a means the tension of the mind can not be kept faraway. To have to be free from the worries and tension, these two formulae are extremely useful (1) "To understand circumstance with patience and discretion alongside not to be got influenced with the circumstances." (2) To think over that, "that which has to happen can not be avoided otherwise neither which has not to happen could be done." On the strength of such deliberation only the life can be free from tension.

85. To make life full with pleasure there are two great secrets (1) Faith of religion !2! Trust in 'Karma' or dead. Through the religion only the being would be benefitted, non-religiousness, injustice, impropriety are clearly causes of downfall and injury, therefore faith of religion must exist in

समझा जा सकता है, संसार से राग करके संसार के स्वरूप को समझा जाना संभव नहीं है। जो जीव संसार से वैराग्य का चिंतन करते हैं वे संसार को अनृत क्षणभंगुर असत्, अशरण और दु:खों का भाजन समझते हैं।

८३. जिस जीव का झुकाव संसारी पढार्थों की तरफ होता है उसकी बुद्धि उसी ओर का निर्णय करती है, चित्त में तद् विषयक चिंतायें होती हैं और अहंकार बढ़ जाता है जिससे जीव जन्म-जन्मांतर तक संसार के दु:ख भोगता है। इसके विपरीत जिस जीव का झुकाव धर्म के प्रति होता है उसकी बुद्धि सत्-असत् का निर्णय करने में प्रवत्त होती है, चित्त में चिंतन होता है और अहंकार टूटता है जिससे सच्चे सुख को प्राप्त कर लेता है और संसार के दु:खों से मुक्त हो जाता है।

८४. संसारी जीवन में वर्तमान समय में मनुष्य मानसिक तनाव की बीमारी से ग्रसित है, इस तनाव को दूर करने के लिये व्यक्ति व्यसन और नशा आदि का सहारा लेता है किन्तु इन औपचारिक उपायों से मन के तनाव को दूर नहीं किया जा सकेगा। मानसिक तनाव और चिंताओं से मुक्त होने के लिये यह दो सूत्र अत्यंत उपयोगी हैं - (१) धैर्य और विवेक पूर्वक परिस्थिति को समझना तथा परिस्थितियों से प्रभावित न होना। (२) यह चिंतन करना कि ''होने वाले को टाला नहीं जा सकता और नहीं होने वाले को किया नहीं जा सकता''। इस चिंतन के बल पर ही जीवन तनाव मुक्त हो सकता है।

८५. जीवन को सुखमय बनाने के लिए दो महामंत्र हैं- १. धर्म का श्रद्धान २. कर्म का विश्वास। धर्म से ही जीव का हित होगा। पाप, अधर्म, अन्याय, अनीति स्पष्ट रूपेण पतन के अहित के कारण हैं; इसलिए जीवन में धर्म की सच्ची श्रद्धा होना चाहिये और सांसारिक संयोगी जीवन में कर्म का विश्वास रखना आकुलता से बचाने वाला है। प्रत्येक जीव का वर्तमान परिणमन उसके पूर्व कृत कर्मोदयानुसार चल रहा है ऐसा विचार कर आकुलता नहीं करना, कर्म का विश्वास रखना यही जीवन को सुखमय बनाने का आधार है।

life and to have to keep trust of 'Karma' in worldly connected life is defensive of agitation. The present transformation of every being's life is going on according to his 'Karmas' done previously, having had such a reaction on, 'don't do agitation', to have to keep belief of 'Karma', this very is the basis to make life full of pleasure.

86. Auspicious 'Karmas' have to be done for purification of the mind but having done 'Karma', realisation of substance means obtainment of self doesn't happen to be, on the contrary obtainment or accomplishment of self form in fact takes place with thought, thinking, discretion of self-non self only. Till millions of birth the being having done even millions of 'Karmas' can not obtain self form though by dint of them purity of mind happens to be inevitably.

87. With diacriticai knowledge on having discretion of senseless and conscious elements that fire identical to self knowledge happens to be expressed that knowledge exterminates all 'Karmas' produced by ignorance.

88. Existence of substance is eternal everlststing, none of the substance ever happens to be borne neither gets destroyed that means existence of the substance never happens to be destroyed, merely change occurs to be in their positions, which is called transformation. Our sight rests on synonymous transformation therefore we continue to remain to be sorrowful. But might there be sight of nature to exist, then would have been happy this very moment.

89. That being who has been considering good or bad in birth successions only does malice enmity, he is ignorant. And one who having had retained existence of equality amongst birth successions, does accomplishment, worship of nature, he is learned.

८६. शुभ कर्म चित्त की शुद्धि के लिये किये जाते हैं किन्तु कर्म करने से वस्तु अर्थात् आत्मोपलब्धि नहीं होती, आत्म स्वरूप की सिद्धि तो विचार, चिंतन भेदज्ञान पूर्वक ही होती है। करोड़ों जन्म तक जीव करोड़ों कर्म करके भी स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकता, इनसे चित्त शुद्धि अवश्य होती है।

८७. भेदज्ञान पूर्वक जड़-चेतन का विवेक होने पर जो आत्म बोध रूपी अग्नि प्रगट होती है वह अज्ञान जनित समस्त कर्मों को जड़ मूल से नष्ट कर देती है।

८८. वस्तु का अस्तित्व अजर-अमर है, कोई भी वस्तु न कभी उत्पन्न होती है और न नष्ट होती है अर्थात् वस्तु का अस्तित्व कभी नष्ट नहीं होता, मात्र अवस्थाओं में परिवर्तन होता है जिसे पर्यायी परिणमन कहते हैं। हमारी दृष्टि पर्यायी परिणमन पर रहती है इसलिए हम दुःखी बने रहते हैं, स्वभाव दृष्टि हो तो इसी क्षण सुखी हो जायें।

८९. जो जीव पर्यायों में ही अच्छा-बुरा मानता रहता है राग-द्वेष करता है, वह अज्ञानी है और जो पर्यायों में समभाव धारण कर स्वभाव की साधना-आराधना करता है वह ज्ञानी है।

90. The welfare does not exist in escaping from the circumstances; welfare lies in being got awakened towards the circumstances. Accomplishment of religion does not occur through escapism, religion is the name of inner awakening. One who is awakened runs away fiom the world, means happens to be commenced in doing with own good. To observe auspicious conduct together with ignorance, falsehood does not make worthy the path of liberation; the path of salvation has to be made though performance of right faith, right knowledge with right conduct. manifestation of right faith verily is called inner awakening, this very is the fundamental basis of religion.

91. The seed of tree identical to world is ignorance, self intellect to be put into the body is it's sprout, leaves exist in this tree identical to malice, the body (trunk of the tree) is the stem, branches are the life, senses are by-branches, worldly desires are its flowers and pain produced by many kinds of 'Karmas' is the fruit and the bird identical to living being is truly a sufferer.

92. The progress of the world happens to be through ignorance, delusion. Only having had to do performance of right faith right knowledge, right conduct the being happens to be free from suffering of fruition of 'karma' of the world identical to the tree.

93. Everyone in present materialistic age seized upon greed for enjoyment of sensual desires is racing after riches. For this very reason unrest, injustice, atrocity, corruption is being spread throughout the country. Had there been born inclination of fascination towards religion and spiritualism in a fashion we have been attracted towards riches, delusion, then not only own goodness would take place, but country's and society's welfare also would have taken place.

94. Spiritualism is the main source of our life hence worthiness of human life consists in making life itself spiritual.

१०. परिस्थितियों से भागने में कल्याण नहीं है, परिस्थितियों के प्रति जागने में कल्याण है। पलायनवाद से धर्म सिद्ध नहीं होता, धर्म अंतर्जागरण का नाम है। जो जागता है वह संसार से भागता है अर्थात् अपना आत्म कल्याण करने में प्रवृत्त हो जाता है। अज्ञान मिथ्यात्व सहित शुभ आचरण का पालन करना मोक्षमार्ग को प्रशस्त नहीं करता, मोक्षमार्ग सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान पूर्वक सम्यक्चारित्र का पालन करने से बनता है। सम्यक्दर्शन की प्रगटता ही अंतर्जागरण कहलाता है, यही धर्म का मूल आधार है।

११. संसार रूपी वृक्ष का बीज अज्ञान है, शरीर में आत्म बुद्धि होना उसका अंकुर है, इस वृक्ष में राग रूपी पत्ते हैं, कर्म जल हैं, शरीर (स्तम्भ) तना है, प्राण शाखायें हैं, इन्द्रियां उपशाखायें हैं, विषय पुष्प हैं और नाना प्रकार के कर्मों से उत्पन्न हुआ दु:ख फल है तथा जीव रूपी पक्षी ही इनका भोक्ता है।

१२. अज्ञान मोह से संसार की वृद्धि होती है। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के पालन करने पर ही जीव इस संसार रूपी वृक्ष के कर्म फलों के भोग से मुक्त होता है।

१३. वर्तमान भौतिकवादी युग में भोगाकांक्षा की लिप्सा से ग्रसित हर आदमी माया के पीछे दौड़ रहा है इसी कारण अशान्ति, अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार सारे देश में फैल रहा है। हमारे मन में जिस प्रकार माया मोह के प्रति राग और रुचि है उसी प्रकार धर्म के प्रति अध्यात्म के प्रति प्रीति भाव पैदा हो जाये तो स्वयं का कल्याण तो होगा ही, समाज और देश का भी उद्धार हो जायेगा।

१४. अध्यात्म हमारे जीवन का मूल स्रोत है अत: आध्यात्मिक जीवन बनाने में ही मानव जीवन की सार्थकता है।

95. If tolerance, politeness, and rich behaviour do not exist in our life then there is no importance in having education intellect and other arts in life. If forbearance, patience, compassion, charity etc. good qualities happen to exist in life then the life happens to be developed.

96. Through virtues development of man takes place and through blemishes destruction happens to be. Therefore it is the duty of judicious man to know virtue and vice and having had known them to have relinquished vices whereas to have accepted virtues. By dint of acceptation of qualities only, the way of rising prosperity of soul happens to be praiseworthy.

97. To have to do conduct in qualities is itself the conduct of religion. With the religious conduct the life happens to be sacred and in turn rendered profane from irreligious living.

98. The human life has to be got decorated with religion to be pious then only worthiness of this life exists.

99. The soul is repository of infinite qualities, might have sight once of infinite splendour of own then even a moment would not be needed in being got rid of the sinfulness of the birth form.

100. From seeing others fault the tendency to see blemish gets awakened, therefore man of wisdom should have not to harbour feeling of seeing other's faults.

101. To own virtuous qualities and to relinquish blemishes is the identity of judicious man. And this is the life style through which devoid of enmity happy life could be lived. Own qualities should have to be hidden and other's faults should have been covered, this is an easy behaviour of virtuous being.

102. Ability has had not to be glittered by self praise. The ability happens to be expressed through speech, conduct and behaviour.

९५. सहनशीलता, नम्रता और मधुर व्यवहार यदि हमारे जीवन में नहीं है तो विद्या, बुद्धि और अन्य कलाओं का जीवन में होने का कोई महत्व नहीं है। जीवन में सहनशीलता, धैर्य, दया, परोपकार आदि सद्गुण होते हैं तो जीवन उन्नत होता है।

९६. अच्छाइयों से मनुष्य का विकास होता है और दुर्गुणों से विनाश होता है इसलिये गुण और दोष दोनों के स्वरूप को जानकर दोषों का त्याग करना और गुणों को ग्रहण करना यही विवेकवान जीव का कर्त्तव्य है, गुणों के ग्रहण करने से ही आत्मा के उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता है।

९७. गुणों में आचरण करना ही धर्म का आचरण है, धर्माचरण से जीवन पवित्र बनता है और अधर्म से अपवित्र बनता है।

९८. मनुष्य जन्म धर्म से सुशोभित हो पवित्र हो तभी इस जन्म की सार्थकता है।

९९. आत्मा अनंत गुणों का भण्डार है, एक बार अपने अनंत वैभव का दर्शन करें तो पर्याय की पामरता दूर होने में एक पल भी न लगे।

१००. दूसरों के अवगुण देखने से पर दोष दर्शन की वृत्ति जागती है इसलिये विवेकवान व्यक्ति को दूसरों के दोषों को देखने की भावना नहीं रखना चाहिये।

१०१. सद्गुणों को अपनाना और दोषों को त्यागना विवेकवान इन्सान की पहिचान है। अपने गुणों को छिपाना चाहिये और दूसरे के दोषों को ढंकना चाहिये यह धर्मात्मा जीव का सहज व्यवहार है और यही जीवन शैली है जिसके माध्यम से ईर्ष्या रहित सुखी जीवन जिया जा सकता है।

१०२. अपने मुख से अपनी प्रसंशा करने से योग्यता नहीं झलकती, योग्यता-वाणी, आचरण और व्यवहार से प्रगट होती है।

103. Those men who happen to be self-eulogising, having heard other's praise they start to have envy in them and to fall an easy prey of envy on having heard other's praise this of course is the biggest of all weaknesses of man.

104. To praise own-self and to criticise others, to cover others good qualities and to uncover vicious qualities happens to be incoming of "Neech Gotra Krma", or sordid race, lineage.

105. Just like flower blooms then it's fragrance gets spread all around and some foul smelt object is being decaying somewhere then it's reek smell spreads all over, in the same way fame of talented man happens to be scattered all around easily and faulty man becomes fit for dishonour.

106. Might there be faith, belief existed of own form then having driven away malice etc., faults through devotion, self-qualities would be developed, this development awakens self strength which is a means to be tree from bondage's of the birth form and defects of the mind.

107. The world and salvation remains to be dependent on solely own-sight, to turn away sight is verily the world and to have sight turned to wards own nature is the commencement of emancipation. On account of the sight being turned to other, strength of existences of malice happens to be, the mind happens to be active with which incoming of 'Karma' (Ashrawa) and bondage takes place.

108. Keep the sight turned towards ownself, this will make road to final beatitude and due to the reason the sight being occurred to wards own-self, activeness of the mind obliterates and gradual shading of'Karmas' (Samwar) and annihilation (Nirjara) takes place.

109. If you have be happy then having known basic source of pain, you have got to be free from it, the soul it self is a happy form but not to have knowledge of own happy form is actually ignorance.

१०३. जो व्यक्ति आत्म प्रसंशक होते हैं, दूसरे की प्रसंशा सुनकर उन्हें ईर्ष्या होने लगती है और दूसरों की प्रसंशा सुनकर ईर्ष्या का शिकार हो जाना आदमी की सबसे बड़ी कमजोरी है ।

१०४. अपनी प्रशंसा करना तथा दूसरों की निंदा करना, दूसरों के सद्गुणों को ढंकना और असद्गुणों को प्रगट करना इससे नीच गोत्र कर्म का आस्रव होता है।

१०५. जिस प्रकार फूल खिलता है तो उसकी सुगंध चारों और फैलती है और कोई दुर्गंधित वस्तु सड़ रही हो तो उसकी दुर्गंध फैलती है इसी प्रकार गुणवान व्यक्ति का यश सहज ही चहुंओर विकसित होता है और दुर्गुणी व्यक्ति अपयश का पात्र बनता है।

१०६. आत्म स्वरूप की श्रद्धा, विश्वास हो तब रागादि दोषों को साधना के द्वारा दूर करने पर आत्म गुणों का विकास होगा, यह गुणों का विकास ही आत्मबल को जाग्रत करता है जो पर्यायी बंधनों और मन के विकारों से मुक्त होने का उपाय है।

१०७. संसार और मोक्ष अपनी दृष्टि पर ही निर्भर रहते हैं, दृष्टि का परोन्मुखी होना ही संसार और दृष्टि का आत्म स्वभाव की ओर होना मोक्ष मार्ग का प्रारम्भ है। दृष्टि के परोन्मुखी होने से रागादि भावों की प्रबलता होती है, मन सक्रिय होता है जिससे कर्म आश्रव और बंध होता है।

१०८. दृष्टि आत्मोन्मुखी रखो इससे मुक्ति का मार्ग बनेगा और आत्मोन्मुखी दृष्टि होने से मन की सक्रियता मिटती है तथा कर्मों का संवर और निर्जरा होती है।

१०९. सुखी होना है तो दुःख के मूल स्रोत को जानकर उससे मुक्त होना होगा, आत्मा स्वयं सुख स्वरूप है किन्तु अपने सुख स्वरूप का बोध न होना ही अज्ञान है।

110. From ignorance infatuation happens to be produced, from infatuation desires are borne, from desires agitation, perplexity happens to be produced; this agitation, perplexity is verily pain. If you desire to be happy then drive out ignorance that means to accept as such that "I" different to body etc., connections,'am' identical to accomplished original own soul conscious element God soul, be firm in this very faith. Destruction of ignorance and light of right knowledge is verily a means of true happiness.

111. Lack of tolerance has to destroy patience of inner heart, having had lost patience no time elapses in being prepared hellish environment in family and society. To be got almost irritated in small and futile matters is a symbol of impatience.

112. In whichever family wherein environment of quarrel and disquiet stays, there is hell.

113. The family wherein equalness, peace, and love and affection respect of each other's sentiments and honour takes place truly there is heaven.

114. The heaven and hell are prepared by the sentiments of the being. For reaping fruit of virtue-vice done in this life he has to travel through heaven and hell, whoever living creature is being living in present as such with this very his future life happens to be decided.

115. Circumstances do not make the being happy or sorrowful; conformity and contrarieties also do not make him happy or painful, the main reason of being in pleasure or pain is knowledge and Ignorance. For this very reason 'Acharya' virtuous teacher 'Taran Swami Ji Maharaj' has given clues, as such: - equal to knowledge is pleasure; pain is equal to ignorance, and liberation is equal to experience.

116. In internal of whoever being as much as right faith happens to be got expressed, he happens to be happy to that much gradually. In whoever being's inner-self the ignorance as much happens to be deep, to that much has to remain unhappy.

११०. अज्ञान से मोह उत्पन्न होता है, मोह से इच्छायें पैदा होती हैं, इच्छाओं से आकुलता-व्याकुलता उत्पन्न होती है, यह आकुलता-व्याकुलता ही दु:ख है। सुखी होना है तो अज्ञान को दूर करो अर्थात् शरीरादि संयोगों से भिन्न मैं सिद्ध स्वरूपी शुद्धात्मा चैतन्य तत्त्व भगवान आत्मा हूँ, ऐसा स्वीकार करो, इसी श्रद्धा में दृढ़ रहो। अज्ञान का नाश और सम्यक्ज्ञान का प्रकाश ही सच्चे सुख का उपाय है।

१११. सहनशीलता का अभाव मनुष्य के अंतरंग में धैर्य को नष्ट कर देता है। परिवार और समाज में धैर्य के खो जाने से नारकीय वातावरण बनने में देरी नहीं लगती, छोटी-छोटी सी बात में चिड़चिड़े से हो जाना अधीरता की निशानी है।

११२. जिस परिवार में कलह और अशांति का वातावरण रहता है, वहाँ नरक है।

११३. जिस परिवार में जीवों के मन में समता शांति प्रेम स्नेह, एक दूसरे की भावनाओं का आदर और सम्मान होता है वहीं स्वर्ग है।

११४. स्वर्ग और नरक जीव की भावनाओं से बनते हैं। इस जन्म में किये हुए पुण्य-पाप का फल भोगने के लिये उसे स्वर्ग और नरक में जाना पड़ता है, जो जीव वर्तमान में जैसा जी रहा है इससे ही उसके भविष्यत् जीवन का फैसला होता है।

११५. परिस्थितियां जीव को सुखी-दु:खी नहीं करतीं, अनुकूलता-प्रतिकूलतायें भी जीव को सुखी-दु:खी नहीं करतीं, सुख और दु:ख होने में प्रमुख कारण ज्ञान और अज्ञान है; इसलिये आचार्य सद्गुरु तारण स्वामी जी महाराज ने सूत्र दिये हैं -ज्ञान प्रमाण सुख, अज्ञान प्रमाण दु:ख और अनुभव प्रमाण मुक्ति।

११६. जिस जीव के अंतरंग में जितना-जितना सम्यक्ज्ञान प्रकट होता है, वह उतना ही सुखी होता जाता है। जिस जीव के अंतर में अज्ञान जितना गहन होता है वह उतना ही दु:खी रहता है।

117. It is imperative to get awakened discretion of eternal and non-eternal in worldly life to be happy. No sooner the discretion of everlasting and transitory has to be got awakened fears and doubts happen to be destroyed and partiality too gets obliterated.

118. Every being is the maker of his own destiny himself, no one else is a giver of pleasure or pain to anyone, all beings are reaping fruit of pleasure of pain according to own and individual' Karma' of virtue or vice.

119. The main reason of expansion of the world is ignorance and infatuation. So far as 'mine and mine' as such sentiment exists up to that infatuation exists, only on account of infatuation deformity happens to be produced.

120. The existence of attachment gets the being sunk in the world and existence of asceticism causes the being to cross over sea of the world.

121. There is no other pain equal to attachment in the world, and no other pleasure equal to denunciation, asceticism exists.

122. The life of a householder follower of 'Jainism' is a sacred grove, where being living he has to purify his life with the strength of devotion and worshipful prayer to accomplish this important task, three bases are necessary e.g.; True faith, Virtuous discretion and Right Conduct.

123. In the life of follower of 'Jainism' prominence of conduct, deliberation, activity remains to exist thoroughly. With the exercise of being treading on this virtuous path only the shrawak' follower of 'Jainism' has to become 'Shraman' the sage. In Indian culture this very right conduct has been said religion.

124. The beings who accepted spiritualism to them only self perceptions have had occurred these very learneds happen to be capable to obtain dignity of supreme self.

११७. संसारी जीवन में सुखी होने के लिये सत्-असत् का विवेक जाग्रत करना अनिवार्य है। सत्-असत् का विवेक जाग्रत होते ही भय और शंकायें नष्ट हो जाती हैं और भेद भाव भी मिट जाता है।

११८. प्रत्येक जीव अपने भाग्य का विधाता स्वयं है, कोई किसी को सुख-दु:ख देने वाला नहीं है, समस्त जीव अपने-अपने पुण्य-पाप कर्म के अनुसार सुख-दु:ख रूप फल भोग रहे हैं।

११९. संसार के विस्तार का प्रमुख कारण अज्ञान और मोह है। जहां तक ''मेरा-मेरा'' ऐसी भावना है वहां तक मोह है, मोह के कारण ही विकार उत्पन्न होता है।

१२०. राग भाव जीव को संसार में डुबाता है और विरक्ति का भाव जीव को संसार सागर से पार लगाता है।

१२१. राग के समान संसार में दूसरा कोई दु:ख नहीं है और त्याग वैराग्य के समान दूसरा कोई सुख नहीं है।

१२२. गृहस्थ श्रावक का जीवन एक तपोवन है, जहां रहते हुए धर्म की साधना आराधना के बल से उसे अपना जीवन निखारना है, इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये तीन आधार आवश्यक हैं - सच्ची श्रद्धा, सद्विवेक और सम्यक् आचरण।

१२३. श्रावक के जीवन में आचार, विचार, क्रिया की प्रमुखता रहती है, इस सत्य मार्ग पर चलते रहने के अभ्यास पूर्वक ही श्रावक, श्रमण बनता है। भारतीय संस्कृति में इस सम्यक् आचरण को ही धर्म कहा गया है।

१२४. जिन जीवों ने अध्यात्म को स्वीकार किया उन्हें ही आत्म दर्शन हुए हैं, वही ज्ञानी परमात्म पद प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं।

125. The enlightened knows it that which is formless and consciousness that very' I my-self am and that which bears sense of touch, smell, taste together with complexion is body, might that be either an atom or an assembly, that '1' am not, and that which is formless yet unconscious that too 'I' am not, those religion, irreIigion, space, time are also devoid of consciousness. I am conscious element witness, knower, everlasting indestructible form of truth.

126. If you want to remain under impassive bliss and pleasure then having had to do discretion clearly among view and viewer, knowable and knower do have to know, these could not be one, to treat them one is verily ignorance and falsehood.

127. Scenes are transformable, are being changing but the sightseer is merely spectator, he never happens been destroyed like the scene, As a matter of fact knowable is entire universe but the knower is completely different to Irnowable form of other objects. When the knower, knowledge, knowable might happen to be undivided, therein only rise of own God a form of eternal nature takes place, therefore do have to make only one sight, "Dhruva swaroop hoon maie. sukhdham; gyata drashtaj, Atamram." (I am eternal form home of happiness, knower viewer own spirit)

128. As much of our time elapsed in discussion of religion, deliberation of elements, self accomplishment, virtuous company, precisely good use of time of that much occurred, such as should have to be known and the time which happens to be passed in useless talks causing malice-enmity to increase, in quarrel and bad company, that is misuse of time.

129. The moments of this life are extremely precious, hence good use of each and every moment should have been ensured; because from human birth itself deliverance of the soul could have been done, in other lives such capability does not happen to be obtained, therefore only in having constructed way of self-welfare, worthiness of obtaining human birth exists.

१२५. ज्ञानी जानता है कि जो अरूपी है और चैतन्य है वही मैं हूं, जो स्पर्श, रस, गंध, वर्णवान है वह पुद्गल है, वह अणु हो या स्कंध, वह मैं नहीं हूं और जो अरूपी है किन्तु अचैतन्य है वह भी मैं नहीं हूं, वे धर्म अधर्म आकाश काल भी चेतना रहित हैं। मैं चैतन्य तत्त्व साक्षी ज्ञायक सदाकाल अविनाशी सत्य स्वरूप हूँ।

१२६. निराकुल सुख और आनन्द में रहना चाहते हो तो दृश्य और दृष्टा में, ज्ञेय और ज्ञाता में स्पष्टतया भेद करके जानो, यह एक नहीं हो सकते इन्हें एक मानना ही अज्ञान मिथ्यात्व है।

१२७. दृश्य परिवर्तनशील हैं, बदलते रहते हैं, किन्तु दृष्टा, दर्शक मात्र है वह दृश्य की तरह कभी नष्ट नहीं होता। ज्ञेय तो सम्पूर्ण लोक है किन्तु ज्ञाता, ज्ञेय रूप पर पदार्थों से सर्वथा भिन्न है। जब ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय तीनों अभेद हो जायें वहीं ध्रुव स्वभाव रूप निज भगवान का उदय होता है। इसलिये एक ही दृष्टि बनाओ – ''ध्रुव स्वरूप हूं मैं सुख धाम, ज्ञाता–दृष्टा आतमराम''

१२८. धर्म चर्चा, तत्त्व चिंतन, आत्म साधना, सत्संगति में हमारा जितना समय व्यतीत हुआ, उतने समय का यथार्थतया सदुपयोग हुआ जानना चाहिये और राग–द्वेष को बढ़ाने वाली व्यर्थ चर्चाओं में, कलह और खोटी संगति में जो समय व्यतीत होता है वह समय का दुरुपयोग है।

१२९. इस जीवन के क्षण अत्यंत बहुमूल्य हैं, अतः एक–एक क्षण का सदुपयोग करना चाहिये, क्योंकि मनुष्य भव से ही आत्मा का उद्धार हो सकता है, अन्य गतियों में ऐसी योग्यता प्राप्त नहीं होती, इसलिये अपने आत्म कल्याण का मार्ग बना लेने में ही नर जन्म प्राप्त करने की सार्थकता है।

130. The kind of environment has had to meet the way connections have to be gotten, accordingly alike that auspicious, inauspicious existences happen to be produced in the mind, according to those intentions verily bondage of karma happens to be.

131. At present valour of the being is this very that being escaped from bad intentions, get remained inclined in good intentions because under the role of performance of auspicious existences verily obtainment of religion happens to occur.

132. Human being together with mind is a conscious living creature with five organs of sense, he happens to be prudential hence every activity-should have been done with discretion, for with auspicious existence in coming of virtue-takes place and from inauspicious existence incoming of sin happens to be and from the form of auspicious existence with clean meditation, obtainment of libeation takes place.

133. Who might be indifferent with the enjoyments of the world, body, desire and passions, renunciation of superfluous wealth, be devoid of hypocrisy, absorbed in meditation, knowledge, penance, disillusioned, and in whose inner-self an illusion of passions would not have to exist, that very is true teacher, having had to go under the shelter of such true teacher only, self-welfare happens to be obtained. One who himself would cross over the world sea along with causes others to go across the world, that very is the true teacher.

134. The true teachers, approver of the phrase "'Aap tireye par, Tarey", happen to be alike wooden boat, who themselves cross over and help others of the world to go across the sea of the world to say achieve salvation; false teachers alike boat of stone approve of the saying "Aap dubante pandey le-doobey jajaman", happen to be similar to "janma jal upal nao",

१३०. जैसा वातावरण मिलता है, जैसे संयोग मिलते हैं, मन में उसी प्रकार के शुभ-अशुभ भाव उत्पन्न होते हैं, उन भावों के अनुसार ही कर्म का बंध होता है।

१३१. वर्तमान में जीव का पुरुषार्थ यही है कि अशुभ भावों से बचते हुए शुभ भावों में प्रवृत्त रहे क्योंकि शुभ भावों की भूमिका में ही धर्म की प्राप्ति होती है।

१३२. मानव-मन सहित संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है, वह विवेकवान होता है, अत: प्रत्येक क्रिया विवेक पूर्वक करना चाहिये इसलिये कि शुभ भाव से पुण्यास्रव होता है और अशुभ भावों से पाप आस्रव होता है और शुद्ध भाव रूप निर्मल ध्यान से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

१३३. जो संसार शरीर भोगों से विषय वासनाओं से विरक्त हो, अपरिग्रही हो, पाखण्ड रहित हो, ज्ञान ध्यान तप में लीन, निर्ग्रन्थ, कषायों की ग्रन्थि जिसके अंतस् में न हो, वही सच्चा गुरू है, ऐसे सच्चे गुरू की शरण में जाने से ही आत्म कल्याण का मार्ग प्राप्त होता है। जो संसार सागर से स्वयं तरे तथा अन्य जीवों को भी संसार से पार लगाये वही सच्चा गुरू है।

१३४. सच्चे गुरू ''आप तिरैं पर तारें'' की उक्ति को चारितार्थ करने वाले लकड़ी की नौका की तरह होते हैं जो स्वयं भी तरते हैं और जगत के जीवों को भी तारते हैं। कुगुरू ''जन्म जल उपल नाव'' पत्थर की नौका की तरह ''आप डुबन्ते पांडे ले डूबे जिजमान'' की उक्ति को चारितार्थ करते हैं। जो संसार सागर में स्वयं डूबते हैं और उनकी शरण में जो जीव जाते हैं वे भी संसार में भटकते हैं। व्यवहार से सच्चे गुरू निर्ग्रन्थ दिगम्बर भावलिंगी संत हैं, जो जीवों को सन्मार्ग में लगाते

as elicited above. Those who themselves get drowned into the world sea and the beings happen to be under their shelter or goes there in also have to wander about hither and thither in the world. By behavior the true-teachers are stark naked (disillusioned), spiritual saints who set beings to right path, therefore having accepted shelter of true teacher one should have made his own way of emancipation.

135. Involved in enjoyments of worldly desires of senses, the being could not have done his own welfare, the being is feeling pleasure in making good supplies of worldly desires, and passions only due to ignorance.

136. Awakening of ascetic existence is itself a step of one's own self-good. The self realiser devotee should have to deliberate on the body form together with existences of pacification, asceticism, compassion, theism for the firmness of ascetic existence concealed under accomplishment, along with the form of the world and to awaken ascetic existence.

137. With the ascetic existence only bondage of infatuation of the being and of the world happens to be loose.

138. Every spirit is a form of supreme spirit, the way tree is concealed in the seed, similarly supreme-self is gloriously present in soul. The way on getting fovourable connection sprouting takes place in the seed and it completes the travel till becoming a tree, similarly being observing right faith, right knowledge, right conduct having had obtainment of favourable matter, field, time, existence, to the being, he completes his spiritual travel to obtain supreme self dignity and on being absorbed in own form happens to obtain supreme-self-dignity.

139. Whatever acquisition of own 'karmas' the being has done according to that enjoying fruition, if auspicious 'Karmas' have been done then at present conformable circumstances have been received, the being is experiencing peace and if have done inauspicious 'Karmas' then at present contrary circumstances have been received and the being is agitated.

हैं ; इसलिये सच्चे गुरू की शरण ग्रहण कर अपने कल्याण का मार्ग बनाना चाहिये।

१३५. इन्द्रियों के विषय-भोगों में लिप्त प्राणी अपना कल्याण नहीं कर पाता, अज्ञानवश जीव विषय वासनाओं की पूर्ति करने में ही सुख मान रहा है।

१३६. वैराग्य भाव का जागरण ही आत्म कल्याण का सोपान है। आत्मार्थी साधक को प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य भाव सहित आत्म साधना के अंतर्गत-संवेग भाव की दृढ़ता के लिये संसार के स्वरूप का और वैराग्य भाव जगाने के लिये शरीर के स्वरूप का विचार करना चाहिये।

१३७. वैराग्य भाव से ही जीव के मोह और संसार के बंधन शिथिल होते हैं।

१३८. प्रत्येक आत्मा परमात्म स्वरूप है, जिस प्रकार बीज में वृक्ष छिपा होता है उसी प्रकार आत्मा में परमात्म शक्ति विद्यमान है। जिस प्रकार बीज को अनुकूल संयोग मिलने पर उसमें अंकुरण होता है और वह वृक्ष बनने तक की अपनी यात्रा पूर्ण करता है इसी प्रकार सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का पालन करते हुए जीव को अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्राप्ति होने पर वह परमात्म पद को प्राप्त करने की अपनी आध्यात्मिक यात्रा पूर्ण करता है, निज स्वरूप में लीन होकर परमात्म पद प्राप्त कर लेता है।

१३९. जीव ने अपने कर्मों का जो उपार्जन किया है उसके अनुसार फल भोग रहा है, यदि शुभ कर्म किए हैं तो वर्तमान में अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त हुई हैं, जीव शांति का अनुभव कर रहा है और अशुभ कर्म किये हैं तो वर्तमान में प्रतिकूल परिस्थितियां मिली हैं तथा जीव अशांति का भोग कर रहा है।

140. Fruition of 'Karma' of some one being can't be enjoyed by the other being. Every being enjoys fruition of 'Karmas' acquired by him self only, if the being might suffer with the fruition of 'Karmas' duly given by the other then the 'karmas' done by own self would be without any result or fruit.

141. There are two kinds of the God or Supreme self-e.g. - 1 'Sakal' supreme spirit and 2. Nikal supreme Spirit. With the reason of being with the body, the 'Arihant is Sakal Parmatma and being devoid of body 'Siddha' 'Bhagwan' is 'Nikal' Parmatma.

142. The 'kewal gyan' is such a sapient sun form of light in which complete universe happens to be reflected like mirror. Supreme spirit is omniscient, omnipresent witness, not a doer, merely is knower-viewer.

143. The being himself does the deed of 'Karma' own self only reaps the fruit of them.

144. The being through his own true efforts could be free from shackles of 'karma' and from birth and death of the world.

145. Spiritual religion itself is quintessential; in the life united with fascination of insentient objects, flowers of pleasure don't bloom. With love of objects of the physical world, being influenced with the external world the living creature is being happening to be disinclined to religious path; disinclination from the religious path is verily a cause of pain and disquietude.

146. "Sanyoganam viyogasch." Whatever connections are existing those are to be broken by rule, the being though does in them selfhoodness and pride with love and that which is original self element, original knowledge, completely consciousness, everlasting having had to forget that, being is happening to be disinclined from spiritual religion, whereas without spiritual knowledge the sentient being can never be happy.

१४०. किसी जीव के कर्मों का फल कोई दूसरा जीव नहीं भोग सकता, प्रत्येक जीव स्वोपार्जित कर्मों के फल को ही भोगता है। यदि जीव दूसरे के द्वारा दिये हुए कर्मों के फल को भोगे तो स्वयं के द्वारा किये हुए कर्म निष्फल हो जायेंगे।

१४१. परमात्मा के दो भेद हैं :- सकल परमात्मा और निकल परमात्मा। शरीर सहित होने से अरिहंत भगवान सकल परमात्मा हैं और शरीर रहित होने से सिद्ध भगवान निकल परमात्मा हैं।

१४२. केवलज्ञान ऐसा परम प्रकाशरूप ज्ञान सूर्य है जिसमें सम्पूर्ण जगत दर्पणवत् प्रकाशित होता है। परमात्मा-सर्वज्ञ, सर्वदृष्टा, साक्षी है, कर्ता नहीं है, मात्र ज्ञाता-दृष्टा है।

१४३. जीव स्वयं ही कर्म करता है, स्वयं ही उनके फल भोगता है।

१४४. जीव अपने ही सत्पुरुषार्थ के द्वारा कर्म के बंधनों से और संसार के जन्म-मरण से मुक्त हो सकता है।

१४५. अध्यात्म धर्म ही सारभूत है, जड़ पदार्थों की आसक्ति से युक्त जीवन में आनंद के पुष्प नहीं खिलते। भौतिक वस्तुओं की प्रीति पूर्वक बाह्य जगत से प्रभावित होकर जीव धर्म मार्ग से विमुख हो रहा है, धर्म मार्ग से विमुखता ही दुःख और अशान्ति का कारण है।

१४६. ''संयोगानाम् वियोगश्च'' जो संयोग हैं वे नियम से छूटने वाले हैं, जीव उनमें तो प्रीति पूर्वक ममकार और अहंकार करता है और जो शुद्धात्म तत्त्व शुद्ध ज्ञान चेतनामयी सदा शाश्वत है, उसे भूलकर अध्यात्म धर्म से विमुख हो रहा है जबकि बिना अध्यात्म के जीव सुखी नहीं हो सकता।

147. The soul present gloriously in the body temple is itself supreme spirit, every spirit or soul is the 'origin form', of supreme spirit. The nature of soul, original self element, transcendent through all three times, (past, present and future) is original, how so ever in whatever succession of birth order it may remain, in whatever condition it existed, the nature has never to be got destroyed. This very original nature is the everlasting nature of soul.

148. By nature each and every soul is similar to supreme spirit. Whosoever being having had accepted this truth has to determine own nature that very being having been ascetic with worldly pleasures of body etc., makes worthy the path of own self-good.

149. To have self intellect be inhibited in body is called falsehood; falsehood it-self is a sin greatest of all, on account of this very reason, the beings do many sins of untruth, theft, disregard of celibacy, accumulation of superfluous wealth etc..

150. Falsehood is the cause of great pains and righteousness is the cause of supreme bliss, having had wakefulness of righteousness being's self intellect situated in the body gets obliterated.

151. On having had identity of self-form means to say that; having bad belief of conscious form different to body; the path of beatitude happens to be commenced.

152. On account of delusion, mental affection enmity sentiments of desires, superfluous holdings, and feelings of envy happen to be produced in mind. Existences of the mind are born of ignorance, which get erased on having had to receive shelter of original own self-form. To complete this important task of work, meditation of soul is to be turned into the soul itself then only bondage of 'Karma' bonded since times immemorial

१४७. देह देवालय में विराजमान आत्मा ही परमात्मा है, प्रत्येक आत्मा कारण परमात्मा स्वरूप है । शुद्धात्म तत्त्व आत्मा का स्वभाव त्रिकालवर्ती शुद्ध है, वह किसी भी पर्याय में रहे, किसी भी अवस्था में रहे, स्वभाव कभी नष्ट नहीं होता । यही शुद्ध स्वभाव आत्मा का शाश्वत स्वभाव है ।

१४८. स्वभाव से प्रत्येक आत्मा परमात्मवत् है । जो जीव इस सत्य को स्वीकार कर अपने स्वभाव का निश्चय करता है वही जीव संसार शरीर भोगों से विरक्त होकर आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है ।

१४९. शरीर में आत्म बुद्धि होने को मिथ्यात्व कहते हैं, मिथ्यात्व ही सबसे बड़ा पाप है, इसी के कारण जीव हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह इत्यादि अनेक पाप करते हैं ।

१५०. मिथ्यात्व महादु:खों का कारण और सम्यक्त्व परम सुख का कारण है । सम्यक्त्व का जागरण होने पर जीव की देह में आत्म बुद्धि मिटती है ।

१५१. आत्म स्वरूप की पहिचान अर्थात् शरीर से भिन्न चैतन्य स्वरूप की प्रतीति होने पर मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है ।

१५२. मोह राग द्वेष के कारण तृष्णा, परिग्रह और ईर्ष्या की भावनायें मन में उत्पन्न होती हैं । मन के भाव अज्ञान जनित हैं जो शुद्धात्म स्वरूप की शरण ग्रहण करने पर मिटते हैं । इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने के लिये आत्मा का उपयोग आत्मा में ही लगाना है, तभी अनादि से बंधे हुए कर्म बंधनों से छूट पायेंगे । मोह रागादि विभाव परिणामों से

would have been got rid of. With the deformed transformations of infatuation attachment etc., being has got acquired whatever 'Karmas' those would only be destroyed by the meditation identical to fire.

153. Those beings who think of asceticism from the world those retainers of asceticism know the world to be the home of fear and pain, the world is transitory, untrue, temporary, only the disinterested being knows this true form of the world. The attached being involved in the world does not know the genuine form of the world.

154. "Sansaranmewa sansarah", i.e.: merely motion is the world. The being having had to be united with falsehood, passions, travels through four lives and eighty four lacks of origins, to have accepted several bodies gradually yet again to leave, such transformations are called the world.

155. The wealth that we are accumulating is not a source of happiness. Pain happens to be in security, expenditure of wealth and great pain takes place if it would have gone in theft. Whose beginning, middle, the ends are full with pain, how such a wealth could be a cause of happiness? The being has kept over false imagination to gain happiness from riches, for this very reason could not be happy and also not being obtained to the vital part of the religion.

156. Agitation perplexity happens to be to the being on account of ignorance. To obliterate agitation and perplexity, subservience of the being should have to be changed, meditation and self-energy has to be got awakened. Might there be made even for a single moment doubtless condition of the being then the right faith would have been expressed.

157. With faith, ties of affection etc. would have broken or cut off by the sharp chisel of wisdom, spread of desires would shrink then the agitation, and perplexity would lack to exist.

जीव ने जिन कर्मों का उपार्जन किया है वे ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा ही नष्ट हो सकते हैं।

१५३. जो जीव संसार से वैराग्य का चिंतन करते हैं वे वैराग्यवान जीव संसार को भय और दु:खों का घर जानते हैं, संसार क्षणभंगुर, असत्य, अशाश्वत है, संसार के इस सत्य स्वरूप को विरक्त जीव ही जानता है। रागी जीव संसार में फंसा हुआ, संसार के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता।

१५४. ''संसरणमेव संसार:'' संसरण ही संसार है। जीव मिथ्यात्व और कषायों से युक्त होकर चार गति चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करता है, अनेक शरीरों को क्रमश: ग्रहण करना फिर छोड़ना, इस परिवर्तन को संसार कहते हैं।

१५५. जिस धन का हम परिग्रह कर रहे हैं यह धन सुख का कारण नहीं है। धन के उपार्जन में दु:ख, धन की रक्षा में दु:ख, धन के खर्चा होने में दु:ख और चोरी चला जाये तो अति दु:ख होता है। जिसके आदि, मध्य, अन्त सभी दु:खमय हैं ऐसा धन सुख का कारण कैसे हो सकता है ? जीव, धन से सुख प्राप्त होने की मिथ्या कल्पना संजोये हुए है इसी कारण सुखी नहीं हो पाता और धर्म के मर्म को भी उपलब्ध नहीं हो रहा है।

१५६. अज्ञानता के कारण जीव को आकुलता-व्याकुलता होती है। आकुलता-व्याकुलता मिटाने के लिये उपयोग को बढ़लना होगा, ध्यान और आत्म पुरुषार्थ जाग्रत करना होगा। यदि जीव की एक क्षण के लिये भी निर्विकल्प दशा बन जाये तो सम्यक्दर्शन प्रगट हो जाए।

१५७. श्रद्धा पूर्वक, ममत्व आदि के बंधनों को ज्ञान की पैनी छैनी से काटना होगा, इच्छाओं का फैलाव सिमटेगा, तो आकुलता व्याकुलता का अभाव होगा।

158. The boat might remain in water then there is no danger but if the water wouId be filled in the boat then there is fear of the boat to be got sunk. In the same way if we live in the world then there is no danger but it the world will remain in our internal sense then it is diffrcult to get across the world.

159. Pleasure Abandonment of doership and ego is verily a means to be happy. In connecting life to become responsible is it self to have invited worries.

160. Those who like to live life with pleasure such discriminative human being should have to use two rules invariably: - (1) to live in home identical to guest. (2) To work like a servant. In this life style idea of indifference from the world, body, enjoyments is placed in.

161. The connections, which have been begotten, those are going to be got rid of, connection is not permanent. Therefore having had awakened existence of desertion, with abandonment of doership and pride to live life full with pleasure is the only means of self-good.

162. Who happen to be intellectual men they do not repent on the time gone by and do not worry about the future, along with that which is available at present, in that too they do not have fascination hence with disinterested ascetic feeling live in the present.

163. Ignorant man wanders about in past, future, the learned lives in the present, because he knows that whatever had to happen that has been occurred, whatever would have to happen that very will take place, and whatever has had to happen, that very is being happening. With such true concept, the learned does not wander about in past and future.

164. Connection - separation is transformation under control of 'Karma' with the cause of fruition of 'Karma' whatever connections happen to be obtained those are being changing, this is the eternal law of the nature.

१५८. नाव पानी में रहे तो कोई खतरा नहीं है, किन्तु पानी यदि नाव में भर जायेगा तो नाव के डूबने का डर है, इसी प्रकार हम संसार में रहें तो कोई खतरा नहीं परंतु यदि संसार हमारे अंतरंग में रहेगा तो संसार से पार होना मुश्किल है।

१५९. कर्तृत्व और अहं का विसर्जन ही सुखी होने का उपाय है। संयोगी जीवन में जिम्मेदार बनना ही चिंताओं को आमंत्रित करना है।

१६०. जो आनन्द पूर्वक जीवन जीना चाहते हैं ऐसे विवेकशील मानव को इन दो सूत्रों का प्रयोग अवश्य करना चाहिये – (१) घर में रहना– मेहमान जैसे (२) काम करना – मुनीम जैसे। इस जीवन शैली में संसार, शरीर, भोगों से विरक्ति का अभिप्राय निहित है।

१६१. जो संयोग मिले हैं वे नियम से छूटेंगे। संयोग स्थायी नहीं हैं इसलिये विरक्त भाव जाग्रत कर कर्तृत्व और अहं के विसर्जन पूर्वक आनन्द पूर्ण जीवन जीना ही कल्याण का उपाय है।

१६२. जो बुद्धिमान जीव होते हैं वे बीते हुए समय का दु:ख नहीं करते और भविष्य की चिंता नहीं करते तथा वर्तमान में जो प्राप्त है उसमें भी उन्हें आसक्ति नहीं होती अत: उदासीन विरक्त भाव पूर्वक वर्तमान में जीते हैं।

१६३. अज्ञानी जीव भूत–भविष्य में भटकता है, ज्ञानी वर्तमान में जीता है क्योंकि वह जानता है कि जो होना था वह हो चुका है, जो होना होगा वही होगा और जो होना है वही हो रहा है इस सत्य विचार पूर्वक ज्ञानी भूत–भविष्य में नहीं भटकता।

१६४. संयोग–वियोग कर्माधीन परिणमन है, कर्म के उदय निमित्त से जो संयोग जीव को प्राप्त होते हैं, वे बदलते रहते हैं यह प्रकृति का शाश्वत नियम है।

165. Connection is subjunctive to 'Karma', whereas peace is at liberty; the connections are to be met with according to 'Karmas' but quietude happens to be gained through knowledge and discretion.

166. The being suffers with as much pain in the world, all those he suffers due to existence of own-ness only, pain, timidity, poverty, dependence etc., faults happen to be produced due to having senselessness in body etc., connections.

167. The being fascinated in passions of the senses gets to be weak in self- courage. That being bereft of self - valour, is idle. The way - coward man has to flee from the battle - field having turned his back, precisely in the same manner, the being got empowered of the senses, - having had to be averse to self - valour runs away from the path of beatitude - and increases the world.

168. For making life auspicious religious attempt is imperative to be done. By dint of this itself good will take place, therefore having got rid of the love of passions of the senses, one should have to get own self awakened.

169. The body being mass of seven primary substances is quite impure unclean, why do you love with such body full of filth? Gloriously present in this body infinite bliss form conscious God you, yourself are, do have to awake love and taste of that very. Might there be not framed sheet of leather on this body then who would have loved it?

170. This mass of five elements is going to be destroyed one day. In lack of consciousness what value does this body has ? With which all are being valued, know that very and identify, this very is the gist, the world infact is a illusory snare.

१६५. संयोग कर्माधीन है, शांति स्वाधीन है, संयोग कर्मों के अनुसार मिलते हैं, शांति अपने ज्ञान और विवेक से प्राप्त होती है।

१६६. जीव संसार में जितने दु:ख भोगता है वह सब शरीर के संयोग के मम भाव के कारण ही भोगता है, दु:ख, भीरुता,दीनता, पराधीनता आदि दोष शरीरादि संयोगों में मूर्च्छा होने के कारण उत्पन्न होते हैं।

१६७. इन्द्रियों के विषयों में आसक्त जीव आत्म पुरुषार्थ से हीन हो जाता है। जो जीव आत्म पुरुषार्थ से रहित है वह कायर है। जिस प्रकार कायर पुरुष रणक्षेत्र से पीठ दिखाकर भाग जाता है ठीक उसी प्रकार इन्द्रियों के वशीभूत हुआ जीव आत्म पुरुषार्थ से पराङ्मुख होकर मोक्षमार्ग से दूर भागता है और संसार की वृद्धि करता है।

१६८. जीवन को मंगलमय बनाने के लिये धर्म पुरुषार्थ करना परम आवश्यक है। इससे ही हित होगा इसलिये इन्द्रिय विषयों से प्रीति छोड़कर आत्म पुरुषार्थ जाग्रत करना चाहिए।

१६९. शरीर सप्त धातुओं का पिण्ड महा अपवित्र अशुचि है,ऐसे मल से परिपूर्ण शरीर से प्रीति क्यों करते हो ? इस देह में विराजमान अनंत आनन्द स्वरूप चैतन्य भगवान तुम स्वयं हो, उसी की प्रीति रुचि जाग्रत करो। यदि इस देह पर चाम की चादर न मढ़ी हो तो इसे कौन चाहता ?

१७०. शरीर पंच तत्त्व का पिण्ड एक दिन मिट्टी में मिल जाने वाला है। चैतन्य के अभाव में जड़ देह की क्या कीमत है ? जिससे सबकी कीमत हो रही है, उसी को जानो पहिचानो यही सार है, संसार तो माया जाल है।

171. Avarice of worldly desires of various sense causes a great loss, misfortune. Greedy of the desire of beauty, the wasp has to be got dead, dashed to the means of light, the elephant reaps trouble duly involved in the desire of touching sense. The black bee in greed of smell sense loses life being closed with in flower. The fish loses life invoIved in the desire of tongue sense. The dear being under the force of ear sense suffers - pain. These all beings lose their life being over powered with each and only one sense and 'Oh'! Atman, you are being fascinated in desires of all five senses, what will happen to you, just have to think upon it.

172. The being who does not do meditation of own self form and bothers about destructible, destructive objects, can never make available self form; worry increases agitation - perplexity, thinking expresses self - peace, only after doing introspection the being could have been happy.

173. The way we worry about the world similarly, if we do our own introspection then the experience of happiness would occur. To do sins enthusiastically, to do worries of the world is a cause of pain. Deliberation verily is the only way of self-progress.

174. Faithfulness contrary to substance formor distaste of own self is called false sight. In the heart of false viewer being liking of the world happens to be hence he remains being forgotten his own self form. Contrary to it taste of own nature is called right-faith. That knowledge which happens to exist along with false sight, that is being called false knowledge and together with false sight, knowledge that conduct which happens to exist duly empowered by worldly desires, that is called false conduct. The being having been overpowered by itself, having been doing birth and death since times immemorial in the world is suffering from pain. On having had to relinquish themselves the path of emancipation happens to be praise worthy.

१७१. इन्द्रियों के विषयों का लोभ महा अनर्थकारी है – रूप के विषय का लोभी पतंगा प्रकाश के साधनों से टकरा कर मर जाता है । हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के विषय में फंसकर कष्ट भोगता है । भौंरा घ्राण इन्द्रिय के लोभ में फूल में बन्द होकर प्राण खो देता है। मछली रसना इन्द्रिय के विषय में फंसकर प्राण खो देती है। हरिण कर्ण इन्द्रिय के वशीभूत होकर दु:ख भोगता है । यह सभी जीव एक–एक इन्द्रिय विषय के वशीभूत होकर प्राण गंवा देते हैं और हे आत्मन् ! तुम तो पांचों इंद्रियों के विषयों में आसक्त हो रहे हो, अपना क्या होगा विचार तो करो।

१७२. जो जीव आत्म स्वरूप का चिन्तन नहीं करता और नाशवान विनाशीक वस्तुओं की चिन्ता करता है वह आत्म स्वरूप को उपलब्ध नहीं कर सकता क्योंकि चिंता आकुलता–व्याकुलता को बढ़ाती है। चिन्तन आत्म शांति को प्रगट करता है। आत्म चिन्तन करके ही जीव सुखी रह सकता है।

१७३. जिस प्रकार हम दुनियां की चिंता करते हैं उसी प्रकार अपना चिंतन करें तो सुख का अनुभव होगा। पापों को उत्साह पूर्वक करना संसार की चिंताएं करना दु:ख का कारण है। चिंतन ही आत्म उन्नति का एक मात्र मार्ग है।

१७४. वस्तु स्वरूप के विपरीत श्रद्धान को या अपने स्वरूप की अरुचि को मिथ्यादर्शन कहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव के अंतर में संसार की रुचि होती है इसलिये वह आत्म स्वरूप को भूला रहता है। इसके विपरीत अपने स्वभाव की रुचि को सम्यक्दर्शन कहते हैं। मिथ्यादर्शन के साथ जो ज्ञान होता है वह मिथ्याज्ञान कहलाता है तथा मिथ्यादर्शन ज्ञान सहित जो विषयाभिलाषा वश आचरण होता है उसे मिथ्याचारित्र कहते हैं इसके वश होकर ही जीव अनादिकाल से संसार में जन्म मरण करता हुआ दु:ख भोग रहा है। इनके त्याग करने पर ही मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है।

175. The being is burnt under the fire like anger, in intensifying the fire of anger; the falsehood does the work of 'Ghee' or butter oil. Those beings that do excessive wrath upon themselves of the anger identical to fire, they get burnt the religion identical to jewal.

176. Having had accepted words of the Lord God 'jinendra', that means having sought shelter of self-form, whoever beings on the path of salvation do pacification of anger identical to fire, those learned right viewer having had eradicated all three kinds of 'karma' i.e.: "Dravya-karma" (karmas related to matter), "No Karma" (karmas related to body) 'Bhawa Karma' (Psychic karmas) obtain liberation,

177. Anger is fire which causes to burn; forgiveness is water which is a means of refrigeration. Man thinks that everything should have happened according to only his desire and when the work does not happen according to as desired, then the impulse that happens to come in mind, that very is anger. In anger the being happens to be blind, happens to be zero with discretion of good or bad, the anger is a deformity to cause evil of the soul.

178. The way fire causes not only to burn the man but entire creatures, similarly the anger also is a cause of pain to entire creature. Therefore forgiveness is a giver of pleasure merely to all who are living creatures. And forgiveness itself is world religion.

179. There is no religion like compassion or humanity, alike violence there is no sin, alike celibacy there is no austerity, there is no other means alike meditation, alike peace there is no pleasure; alike debt there is no pain, alike knowledge there is nothing else pure, alike original own form nothing else is desired, there is no foe alike anger and alike forgiveness there is no friend, therefore - having retained virtuous, lasting qualities one should have to do selfgood. The supreme forgiveness religion happens to be got expressed with right faith.

१७५. क्रोध रूपी अग्नि में जीव जल रहा है, क्रोधाग्नि को तीव्र करने में मिथ्यात्व घी का कार्य करता है, जो जीव अपने आप पर क्रोध रूपी अग्नि का प्रकोप करते हैं, वे धर्म रूपी रत्न को दग्ध कर देते हैं।

१७६. जिनेन्द्र भगवान की वाणी को स्वीकार कर अर्थात् आत्म स्वरूप का आश्रय लेकर जो भव्य जीव क्रोध रूपी अग्नि का शमन करते हैं वे सम्यक्दृष्टि ज्ञानी तीनों प्रकार के कर्मों अर्थात् द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म को उन्मूलित कर मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

१७७. क्रोध अग्नि है जो जलाती है, क्षमा जल है जो शीतलता का उपाय है। मनुष्य सोचता है कि मेरी इच्छानुसार ही सब हो, और जब सोचे या चाहे अनुसार कार्य नहीं होता तब जो आवेश मन में आता है वही क्रोध है। क्रोध में जीव अंधा जो जाता है, हित-अहित के विवेक से शून्य हो जाता है। क्रोध आत्मा का अहित करने वाला विकार है।

१७८. जिस प्रकार अग्नि मनुष्य मात्र को ही नहीं अपितु प्राणी मात्र को जलाती है, उसी प्रकार क्रोध भी जीव मात्र को दु:ख का कारण है ; इसलिये क्षमा जीव मात्र को सुखदाई है और क्षमा ही विश्व धर्म है।

१७९. दया जैसा कोई धर्म नहीं, हिंसा के समान कोई पाप नहीं, ब्रह्मचर्य के समान कोई व्रत नहीं, ध्यान के समान कोई साधन नहीं, शांति के समान कोई सुख नहीं, ऋण के समान कोई दु:ख नहीं, ज्ञान के समान कोई पवित्र नहीं, शुद्धात्म स्वरूप के समान कोई इष्ट नहीं, पापी के समान कोई दुष्ट नहीं, क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं और क्षमा के समान दूसरा कोई मित्र नहीं है; इसलिये सद्गुणों को धारण कर आत्म हित करना चाहिये । सम्यक्दर्शन पूर्वक उत्तम क्षमा धर्म प्रगट होता है।

180. Having had no place of virtuous existences in the heart, having lost religious sentiments and on being having strong exchange of ignorance, anger happens to be produced. The anger drives out the being far away from religion. Love and affection to be got destroyed from anger, even a friend becomes foe. Family and society also happen to be disquiet due to anger, quarrel and enmity, opposition where takes place, hell gets formed in there, and when the anger gets turned in revengeful sentiment, then it happens to become enmity, anger is rather a pickle and enmity a jam. The way fire is never extinguished with fire, similarly anger is never pacified with anger, anger produces unrest and forgiveness is the home of peace,

181. Affability greatest of all is a quality of the man; politeness is girl friend of happiness. With modesty the doors of final beatitude get opened.

182. Haughtiness drives man to wards downfall; from ignorance hollow pride happens to be produced, haughtiness is the very root of the world.

183. Intoxicated under the wine of egotism the man does not like to hear others, false pride is such an intoxication in which being insane the man does not entreat parents, teachers, and even religion, other's quality also does not appear to be seen by him.

184. Affability happens to be destroyed with haughtiness, a humble man bends, the arrogant man has to get distorted. It is imperative to bend for achieving something. Education happens to be gained with modesty; from education knowledge is received and is verily a means of obtainment of bliss.

185. Haughtiness breaks, politeness connects. Birth of unreligousness from haughtiness, and of religion from modesty takes place. To the ignorant false viewer being infinitely

१८०. हृदय में सद्भावनाओं का स्थान न होने पर, धर्म भावना खो जाने पर और अज्ञानता की परिणति बलवती होने पर क्रोध पैदा होता है। क्रोध, जीव को धर्म से दूर कर देता है। क्रोध से प्रीति, वात्सल्य नष्ट हो जाता है, मित्र भी शत्रु हो जाता है। क्रोध के कारण परिवार और समाज भी अशांत हो जाते हैं, जहाँ कलह और बैर विरोध होता है वहां नरक बन जाता है और क्रोध जब बढ़ला लेने की भावना में बढ़ल जाता है तब बैर बन जाता है। वस्तुत: क्रोध अचार है और बैर मुरब्बा है। जिस प्रकार अग्नि से अग्नि कभी शांत नहीं होती उसी प्रकार क्रोध से क्रोध कभी समाप्त नहीं होता, क्रोध अशांति को पैदा करता है और क्षमा शांति का निधान है।

१८१. विनय मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है, विनम्रता सुख की सहेली है। विनय से मोक्ष का द्वार खुलता है।

१८२. अहंकार जीव को पतन की ओर ले जाता है, अज्ञान से अहंकार उत्पन्न होता है, अहंकार ही संसार की जड़ है।

१८३. अहंकार की मदिरा में उन्मत्त व्यक्ति दूसरे की बात नहीं सुनना चाहता, अहंकार ऐसा नशा है जिसमें उन्मत्त होकर मनुष्य माता-पिता, गुरू और धर्म की भी विनय नहीं करता उसे दूसरे के गुण भी दिखाई नहीं देते।

१८४. अहंकार से विनय नष्ट होती है, विनयवान झुकता है, अहंकारी अकड़ता है। कुछ प्राप्त करने के लिये झुकना अनिवार्य है। विनय से विद्या प्राप्त होती है, विद्या से ज्ञान मिलता है और ज्ञान ही सच्चे सुख की प्राप्ति का उपाय है।

१८५. अहंकार तोड़ता है, विनम्रता जोड़ती है। अहं से अधर्म और विनय से धर्म का प्रादुर्भाव होता है, अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव को अनन्तानुबंधी

binding pride happens to be. On occurrence of right faith, lack of infinitely biding ego and expression of supreme grace of 'mardawa' religion takes place. ("Mardawa' religion means tenderness.')

186. On having had to strike upon man's ego, the feeling of anger comes before excited.

187. Having had to do false pride of wealth, status, splendour, knowledge along with of so many objects, the man himself does creation of the road of his own downfall.

188. To do empty pride of destructive objects is ignorance.

189. Having done self - conceit, whosoever man assumes himself to be greatest of all, he infact happens to be smallest of all.

190. That man, who obtains victory over the psychic deformities of anger, egoism etc., that verily is considered superb in the world.

191. Bearing the burden of pride on head no one can get across the world. Relinquishment of false pride is the real life.

192. Simplicity in itself is a greatest property of man.

193. To be of simple nature is that quality with which the man is considered alike the God or deity.

194. Owing to simplicity of nature elegance comes in the personality of a man.

195. Simplicity is the possession of peace and crookedness is demoniacal tendency.

196. Crookedness of mind, speech, body, etc., is the name of changeability in multiform that means something in mind and anything in speech and yet something else happens to be in body or that not to have internal-external uniformity is solely crookedness. The man does harmful intentions in mind yet speaks with fraudulent form of artificial sweetness and does with the body something very different activity, this very multiplicity is called fraud.

मान होता है। सम्यक्दर्शन होने पर अनन्तानुबंधी मान का अभाव और उत्तम मार्दव धर्म प्रगट होता है।

१८६. मनुष्य के अहंकार पर चोट पड़ने पर क्रोध उभरकर सामने आ जाता है।

१८७. धन का, पद का, वैभव का, ज्ञान का तथा अन्य कितनी ही वस्तुओं का अहंकार करके मनुष्य स्वयं पतन का मार्ग बनाता है।

१८८. जो पदार्थ नष्ट हो जाने वाले हैं उनका अहंकार करना अज्ञानता है।

१८९. अहंकार करके जो व्यक्ति अपने को सबसे बड़ा मानता है, वास्तव में वह सबसे छोटा होता है।

१९०. जो प्राणी क्रोध, अहंकार आदि मानसिक विकारों पर विजय प्राप्त कर लेता है वही संसार में श्रेष्ठ माना जाता है।

१९१. अहंकार का बोझ सिर पर रखकर कोई भी जीव संसार सागर से पार नहीं हो सकता, अहंकार का त्याग ही यथार्थ जीवन है।

१९२. सरलता मनुष्य की सबसे बड़ी संपत्ति है।

१९३. सरल स्वभाव होना वह गुण है जिससे मनुष्य देवता के समान माना जाता है ।

१९४. स्वभाव की सरलता से मनुष्य के व्यक्तित्व में निखार आता है।

१९५. सरलता दैवी संपत्ति है और कुटिलता आसुरी वृत्ति है।

१९६. कुटिलता, मन, वचन, काय की अनेक रूप परिणति का नाम है अर्थात् मन में कुछ और ,वचन में कुछ और, शरीर में कुछ और होता है या यह कि अंतर-बाहर समानता का न होना ही कुटिलता है। मनुष्य मन में खोटे विचार करता है, वचन में कृत्रिम मिठास रूप मायाचारी पूर्वक बोलता है और शरीर से कुछ और ही क्रिया करता है इसी विविधता को मायाचार कहते हैं।

197. The being remains to be fearless with simplicity whereas with crookedness remains sorrowful.

198. To a deceitful being fear of own faults being got exposed remains to be consisted.

199. The way cat drinks milk being got rid of the fear in the same way the man having got relieved with the fear of sin does fraud, yet untruthfulness does not have strong legs. Only truth wins in the world.

200. Simplicity is religion, crookedness is irreligion.

201. The belief of the people happens to be destroyed with beguile form of behaviour.

202. Friendship also lacks to exist with fraud in beguile form.

203. Indentity of gentleness takes place from simplicity itself. Gentleman happens to be simple in behaviour and the wicked man fraudulent.

204. All beings have to reap fruit of their 'Karmas' in the world, therefore - own life should have been rich with virtuous thought, virtuous speech, and good - conduct.

205. Simplicity is our supreme quality, through which only our way of own self-good happens to be praise worthy in life.

206. True religion is comfortable adornment of life; happiness is gained from truth dignity is gained and glories get increased from truth.

207. By dint of telling lie, reputation gets finished, disrepute expands and from one lie, several lies are borne.

208. Truth is a way to advance through towards light from darkness. Truth verily is a way to rise up from death towards immortality.

१९७. सरलता से जीव निर्भय रहता है जबकि कुटिलता से भयभीत चिंतित और दु:खी रहता है।

१९८. मायावी प्राणी को अपने दोषों का पर्दाफास हो जाने का भय बना रहता है।

१९९. बिल्ली जिस प्रकार भय को छोड़कर दूध पीती है उसी प्रकार मनुष्य पाप का भय छोड़कर मायाचार करता है किन्तु असत्यता के पैर मजबूत नहीं होते। संसार में सत्य की ही विजय होती है।

२००. सरलता धर्म है, कुटिलता अधर्म है।

२०१. कपट रूप व्यवहार करने से लोगों का विश्वास नष्ट हो जाता है।

२०२. कपट रूप मायाचार करने से मित्रता का भी अभाव हो जाता है।

२०३. सज्जनता की पहिचान सरलता से ही होती है। सज्जन सरल और दुर्जन कुटिल होते हैं।

२०४. संसार में सभी जीवों को अपनी करनी का फल भोगना पड़ता है। इसलिये सद्विचार, सद्वचन और सदाचरण सम्पन्न हमारा जीवन होना चाहिये।

२०५. सरलता हमारा श्रेष्ठ गुण है, इसी से जीवन में आत्म हित का मार्ग प्रशस्त होता है।

२०६. सत्य धर्म, जीवन का सुखद श्रृंगार है, सत्य से सुख मिलता है, सत्य से प्रतिष्ठा मिलती है और यश बढ़ता है।

२०७. झूठ बोलने से प्रतिष्ठा मरती है, अपयश फैलता है और एक झूठ से अनेक झूठ पैदा होते हैं।

२०८. सत्य, अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने का मार्ग है। सत्य ही मृत्यु से अमरता की ओर उठने का रास्ता है।

209. With the truth small garden of life happens to be fragrant. To have perception of own original self-form is verily the religion of truth.

210. We are not being acquainted with true form being fallen in fascination of nonexistent other objects and untrue temporary existence.

211. Road to downfall from untruth and of improvement from truth of the being is availed of.

212. Speech is treated to be truth in the world. To speak truth in behaviour makes man reliable.

213. With resoluteness that never decays, one that is present through all three times, this very existence is truth. Perception only of this existence of truth is a message of usefulness of life.

214. Ahimsa, Satya, Asteya, Brahmacharya, Aparigraha, Indriya Shuchita etc., serially: Non - violence Truth, not to commit theft, celibacy, Purity of organ of perception etc., are called human religion. To peoples of all caste and religion this quality is worth following and fit to be performed, equally.

215. Conduct is a touchstone or taste of human life. Evaluation of humanity is done through internal or external purity.

216. Cleanliness and purity are the fundamental qualities of our life.

217. Without purity of senses, perception of supreme spirit pervaded in every - being's heart does not happen to be. The religion of purity (shouch dharma) is inspirer beneficial religion to merely all living beings.

218. With 'Kama', 'Krodha', 'Lobha', Moh, serially: - Carnal (desire), Anger, Greed, infatuation etc., deformities, the soul is being happening to be impure, this very impurity is irreligion, which is a reason of man's downfall.

२०९. सत्य से जीवन की बगिया सुगंधित होती है। निज शुद्धात्म स्वरूप के दर्शन करना ही सत्य धर्म है।

२१०. असत् भाव और पर पदार्थों के ममत्व में पड़कर हम सत्य स्वरूप से परिचित नहीं हो पा रहे हैं।

२११. असत्य से जीव का पतन और सत्य से उन्नति का मार्ग बनता है।

२१२. संसार में वाणी को सत्य माना जाता है। व्यवहार में सत्य वचन बोलना मनुष्य को प्रामाणिक बनाता है।

२१३. निश्चय से जिसका कभी मरण नहीं होता जो त्रिकाल विद्यमान रहता है यह अस्तित्व ही सत्य है। इस सत्य का दर्शन ही जीवन की सार्थकता का संदेश है।

२१४. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, इंद्रिय शुचिता आदि को मानव धर्म कहा गया है। सभी वर्ण और सभी धर्म के लोगों के लिये यह गुण समान रूप से अनुकरणीय और आचरणीय हैं।

२१५. चारित्र मानव जीवन की कसौटी है। मानवता का मूल्यांकन अंतर और बाह्य की पवित्रता से किया जाता है।

२१६. शुचिता, पवित्रता हमारे जीवन के मूलगुण हैं।

२१७. इंद्रियों की पवित्रता के बिना घट-घट में व्याप्त परमात्मा का दर्शन नहीं होता है। शौच धर्म प्राणी मात्र को प्रेरणादायी हितकारी धर्म है।

२१८. काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों से आत्मा अपवित्र हो रही है यही अशुचिता अधर्म है, जो मनुष्य के पतन का कारण है।

219. To ask for something is exchange of the mind and with due desire to have - more and more, the greed has had to be turned in yearning.

220. And towards causes obstructing in full - supply of greed, in the mind of the man, existence of malevolence and enmity happens to be produced.

221. The enlightened greatmen have defined passionless existence to be supreme for existence devoid of passion verily is religion of purity.

222. As and as profit accrues, like - that the greed has had to be increased.

223. Owing to reason of psychic existences of defective nature, self corrections are being happening to be filthy.

224. The mind is filled up completely with liking, it's demands never get satisfied and the being inspired to fulfil psychic demands could have never empowered the mind.

225. The mind if be got mixed up with Supreme Spirit, then only obtains peace.

226. When the mind is completely full with passions then it happens to be like the ditch in which even all three universes are seen like a bit of dry grass, this very greed is impurity which has to be kept at bay.

227. 'Acharya Taaran Swami', had said that the way man does greed of external objects similarly might have greed to obtain true religion then the being could have got across eternal - infinite sea of the world.

228. Only religion is a boat to cross over the world.

229. Lack of anger and avarice etc., deformities is verily purity of soul, this very is religion.

230. Being at bay from psychic deformations, perception of stoic nature itself is a means of sanctity, this very is a way to do self-welfare.

२१९. चाहना, मन की परिणति है और प्राप्ति की लिप्सा से लोभ, तृष्णा में बढ़ल जाता है।

२२०. लोभ की पूर्ति में होने वाले बाधक कारणों के प्रति मनुष्य के मन में ईर्ष्या और द्वेष भाव उत्पन्न होता है।

२२१. ज्ञानी महापुरुषों ने निष्कषाय भाव को श्रेष्ठ कहा है क्योंकि कषाय रहित भाव ही शौच धर्म है।

२२२. जैसे-जैसे लाभ होता है वैसे-वैसे लोभ की वृद्धि होती जाती है।

२२३. मन के विकारी भावों के कारण आत्म संस्कार मलिन हो रहे हैं।

२२४. मन, चाहनाओं से आकण्ठ भरा हुआ है उसकी मांगें कभी पूरी नहीं होती और मन की मांगों को पूर्ण करने वाला जीव मन को कभी भी वश में नहीं कर पाता।

२२५. मन परमात्मा के साथ मिल जाये तभी शांति को प्राप्त करता है।

२२६. जब, मन वासनाओं से परिपूर्ण होता है तब उस खाई की तरह होता है जिसमें तीन लोक भी तिनके की तरह दिखाई पड़ते हैं, यह लोभ ही अशुचिता है, जिसे दूर करना है।

२२७. आचार्य तारण स्वामी ने कहा था कि जिस प्रकार मनुष्य बाह्य पदार्थों का लोभ करता है उसी प्रकार सच्चे धर्म को प्राप्त करने का लोभ करे तो जीव अनादि-अनन्त भव सागर से पार हो सकता है।

२२८. धर्म ही संसार से पार होने की नौका है।

२२९. क्रोध लोभ आदि विकारों का अभाव ही आत्मा की शुचिता है यही धर्म है।

२३०. मानसिक विकारों से परे होकर निर्विकार स्वभाव की अनुभूति ही पवित्रता का उपाय है, यही आत्म कल्याण करने का मार्ग है।

231. Precious gem of life is restraint, on whose strength several saint great - men obtained knowledge.

232. Nectar of spiritual knowledge stays in restrained mind. Unrestrained and volatile mind happens to be like a broken bucket in which preaching identical to water gets filled up for a moment but because of holes of volatility has had not to stay in heart, steadiness of heart and mind solely is restraint.

233. Just as mixing up water with dirt, mud happens to exist even though the clay of mud gets cleaned through the water only. Similarly from unsteadiness of the mind mud of unrestraint - happens to be produced but from - steadiness of mind the mud identical to unrestraint gets washed off and happens to be clean. Therefore - the mind should have to be got - absorbed in only consciousness. Steadiness of mind in own form is infact the very restraint.

234. Restraint is a rampart of spiritualism identical to splendour, with which protection of religion takes place.

235. Restraint is main basis in accomplishment of religion.

236. By dint of restraint, development of self qualities takes place, due to unrestraint, downfall of soul happens to be. Those great souls who observed restraint, they had obtained supreme glory and liberated condition. Those who disregarded restraint they became worthy of ignoble condition. Therefore having worshipped restraint with intellect one should have done the way of improvements of self- qualities praise worthy; restraint is unavoidable part of life.

237. Just as there are many dangers in driving a vehicle without brake similarly restraint is a brake of the vehicle of life; many possibilities of accidents happen to be in life devoid of restraint which are apparently being seen in the world. To live a happy life every being shall have to maintain restraint upon own senses and control over the mind. Restraint upon thought is also unavoidable.

२३१. संयम जीवन का अनमोल रत्न है, जिसके बल पर अनेक संत महापुरुषों ने बोधि को प्राप्त किया।

२३२. अध्यात्म का अमृत संयमित चित्त में ही ठहरता है। असंयमित और चंचल चित्त फूटी बाल्टी के समान होता है जिसमें क्षण भर के लिये उपदेश रूपी जल भरता है किन्तु चंचलता के छिद्रों के कारण हृदय में टिकता नहीं है, चित्त का स्थिर होना ही संयम है।

२३३. जिस प्रकार जल के धूल में मिल जाने से कीचड़ हो जाती है किन्तु कीचड़ भी जल से ही साफ होती है, इसी प्रकार चित्त की अस्थिरता से असंयम की कीचड़ पैदा होती है किन्तु चित्त की स्थिरता से असंयम रूपी कीचड़ धुल कर साफ हो जाती है; इसलिये चित्त को चैतन्य में ही तन्मय कर देना चाहिये। चित्त की निज स्वरूप में स्थिरता ही वास्तविक संयम है।

२३४. संयम, अध्यात्म रूपी वैभव की चहार दीवारी है, जिससे धर्म की रक्षा होती है।

२३५. संयम, धर्म साधना में प्रमुख आधार है।

२३६. संयम से आत्म गुणों का विकास होता है, असंयम से आत्मा का पतन होता है। जिन महान आत्माओं ने संयम का पालन किया उनने परम पद और मुक्त दशा को प्राप्त कर लिया। जिन्होंने संयम को ठुकराया वे दुर्गति के पात्र बने; इसलिये बुद्धि पूर्वक संयम की आराधना कर आत्म गुणों में उन्नति का मार्ग प्रशस्त करना चाहिये, संयम जीवन का अनिवार्य अंग है।

२३७. जिस प्रकार बिना ब्रेक की गाड़ी चलाने में बहुत खतरे हैं, उसी प्रकार संयम जीवन की गाड़ी का ब्रेक है, संयम रहित जीवन में अनेक दुर्घटनायें होने की संभावनायें होती हैं, जो लोक में दिख रही हैं। सुखी जीवन जीने के लिये प्रत्येक प्राणी को अपनी इंद्रियों पर संयम रखना होगा और मन को वश में रखना होगा। विचारों पर भी संयम अनिवार्य है।

238. In every field of live restraint is a cause of progress.

239. It is imperative in family life to maintain restraint also on words with which freedom from scramble and dispute takes place.

240. Inabstemious man sleeps over even being vigilant and abstemious man even being slept remains awake; abstemious man remains to be wakeful every moment.

241. Restraint is priceless wealth of life.

242. Mind of man is volatile like monkey, which does not remain quiet and steady even for a moment.

243. The mind is storage of infinite desires. The being who entangles him-self in fulfillment desires of the mind and gets engulfed with psychic deformations of malice etc., and does several kinds of sin merely to fulfil desires that being always remains disquiet.

244. In the life of accomplishers causing mind to be got empowered, verily penance happens to be to exist.

245. Prevention of desires verily is penance.

246, Unless waves of worldly desires, deformities would be rising in mind and the being would be taking interest into them till then penance is not possible.

247. To happen to be absorbed in own original self form is called penance.

248. The meaning of penance is to be heated, means, having had relinquished completely malice etc., faults, to be got absorbed in own self-form is penance. By dint of 'Tap' or penancee, 'Karmaas' happen to be annihilated; path gets constructed to achieve emancipation.

249. Elegance comes in life from penance, mind happens to be lapsed in self - form and 'Karma' blemishes of soul has to be got rid of.

२३८. जीवन के हर क्षेत्र में संयम उन्नति का कारण है।

२३९. गृहस्थ जीवन में वचनों पर संयम रखना भी एक अनिवार्यता है जिससे कलह और विवादों से मुक्ति होती है।

२४०. असंयमी पुरुष जागता हुआ भी सोता है और संयमी पुरुष सोता हुआ भी जागता है, संयमी पुरुष प्रतिपल जागरूक रहता है।

२४१. संयम, जीवन की अनमोल निधि है।

२४२. मनुष्य का मन बंदर की भांति चंचल है जो एक पल के लिये भी शांत और स्थिर नहीं रहता।

२४३. मन, अनन्त इच्छाओं का भण्डार है। जो जीव मन की इच्छाओं को पूर्ण करने में लग जाता है तथा रागाद्धि विकारों से ग्रसित हो जाता है और अनेक प्रकार के पाप मात्र इच्छा पूर्ति के लिये करता है वह जीव हमेशा अशांत रहता है।

२४४. मन को वश में करने वाले साधकों के जीवन में ही तप होता है।

२४५. इच्छाओं का निरोध करना ही तप है।

२४६. जब तक मन में विषय विकारों की लहरें उठती रहेंगी और जीव उनमें रस लेता रहेगा तब तक तप संभव नहीं है।

२४७. निज शुद्धात्म स्वरूप में लीन होने को तप कहते हैं।

२४८. तप का अर्थ है तपना अर्थात् सम्पूर्ण रागाद्धि विकारों का त्याग करके अपने स्वरूप में लीन होना तप है। तप से कर्मों की निर्जरा होती है, मुक्ति को प्राप्त करने का मार्ग बनता है।

२४९. तप से जीवन में निखार आता है, मन आत्म स्वरूप में लय हो जाता है और आत्मा की कर्म कालिमा छूट जाती है।

250. Penance is that river 'Ganga' (sacred river of India) in which all the sins of the being get flown and way of obtainment of immortality to soul has to be got found.

251. The way the goldsmith having heated gold in fire - stove, the pitch black dirt of darkness that happens to be got mixed in with the gold, gets removed to obtain gold in original form, the same way through penance, the "karma' etc., faults which exist in connection with soul, those all get removed away and the soul's accomplished, original form happens to be expressed.

252. From the primary alphabet 'DHRA' the word 'Dharma' (religion) is constructed that's meaning is to retain. Religion is not matter of discussion but a subject of observance of conduct. Merely discussing religion, does not happen to be the religion. Religion takes place from precise perception of true form.

253. Having had accepted qualities to do abandonment of faults is verily religion. To have conduct be carried out through qualities, irreligion has to be got rid of, this very is the religion of abandonment.

254. Meaning of 'Tyag' is to relinquish, to abandon, attachment, affection to quit malice-enmity, jealousy and pride etc faults, itself is abandonment.'Uttam Tyag' or supreme abandonment verily happens to be with right faith.

255. There is a great strength in 'Tyag' the abandonment. Expression of self - powers occur through abandonment only. In ancient times the man having had to give up delusion, illusion diffused in mind having had to live in woods alone, retired had been doing meditation and experience of supreme spirit, form of supreme abandonment. At present the disguised people has deformed the form of abandonment.

२५०. तप, वह गंगा है जिसमें जीव के समस्त पाप बह जाते हैं और आत्मा को अमरत्व की प्राप्ति का मार्ग मिल जाता है।

२५१. जिस प्रकार स्वर्णकार स्वर्ण संयोग में जो किट्टि कालिमा होती है उसे भट्टी में तपाकर दूर कर देता है, स्वर्ण शुद्ध रूप से प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार तप से आत्मा के संयोग में जो कर्म आदि विकार हैं वह सभी दूर हो जाते हैं और आत्मा का सिद्ध शुद्ध स्वरूप प्रगट हो जाता है।

२५२. धृ-धातु से धर्म शब्द बना है, जिसका अर्थ है धारण करना, धर्म चर्चा का विषय नहीं चर्या का विषय है। धर्म की मात्र चर्चा करने से धर्म नहीं होता। सत्य स्वरूप के यथार्थ अनुभव से धर्म होता है।

२५३. गुणों को स्वीकार कर दोषों को त्याग देना ही धर्म है। गुणों में आचरण करने से अधर्म छूट जाता है यही त्याग धर्म है।

२५४. त्याग का अर्थ है छोड़ना, मोह-ममत्व का त्याग करना, राग-द्वेष, ईर्ष्या और अहंकार आदि दोषों को छोड़ना ही त्याग है। उत्तम त्याग सम्यक्दर्शन पूर्वक ही होता है।

२५५. त्याग में बहुत बल है, आत्म शक्तियों की प्रगटता त्याग से ही होती है। प्राचीन काल में मनुष्य, मन में व्याप्त मोह माया को छोड़कर जंगलों में, एकान्त में वास करता हुआ परम त्याग स्वरूप परमात्मा का ध्यान और अनुभव करता था। वर्तमान समय में त्याग का स्वरूप छद्म वेषी लोगों ने विकृत कर दिया है।

256. The 'Tyag' religion does not happen to be eminent by accepting illusion or falsehood. The man to the name of 'Tyag' gets changed his clothing, form and different kinds of disguise gets prepared, yet the sheet being colored in the color of supreme spirit does not have to cover the body with, does not color the mind in the color of self perception therefore true abandonment could not have to be occurred.

257. On having fascination for wealth being neglected, infatuation from physical objects to certain extent happens to be some what reduced, with such form of equalness with inclination the use of wealth etc., objects looking to wards own and other' s good, which is to be done in friendly manner is called charity or 'Dan'.

258. That of course is a true charity, that 's being given without pride.

259. The charity is practical activity. At the time of giving donation the absence of feeling of attachment fascination to wards wealth etc., connected objects exists is the 'Tyag' or abandonment.

260. To do abandonment of haughtiness along with not to have yearning of gold, beautiful woman and fame verily is 'Tyag'. To quit psychic deformities from shelter of self form is relinquishment and to have to secure good use of wealth etc., obtained though fruition of virtue to the causes of compassion, charity, donation etc., and in service of humanity devoid of pride, is 'DAN'

261. To have fascination in physical objects is worldly confinement. This binding of infatuation verily is the world.

262. Till so far there is doubt of 'mine' and 'your' to that far there is expanse of illusion the 'maya' besides all this is illusion of the mind.

२५६. माया के ग्रहण करने से त्याग धर्म प्रसिद्ध नहीं होता। मनुष्य त्याग के नाम पर वस्त्र बदल लेता है, रूप और विभिन्न प्रकार के भेष बना लेता है किन्तु परमात्मा के रंग में रंगी हुई चादर नहीं ओढ़ता, मन को स्वानुभूति के रंग में नहीं रंगता इसलिये सच्चा त्याग नहीं हो पाता।

२५७. धन के प्रति आसक्ति छूटने पर भौतिक पदार्थों से कुछ अंशों में मोह कम हो जाता है, मन की इस समभाव रूप प्रवृत्ति पूर्वक अपने और दूसरों के प्रति हितकारी कार्यों में धन आदि वस्तुओं का जो उपयोग किया जाता है वह दान कहलाता है।

२५८. अहंकार के अभाव पूर्वक जो दान दिया जाता है वह सच्चा दान है।

२५९. दान व्यवहारिक क्रिया है, दान करते समय जो धन आदि संयोगी पदार्थों के प्रति राग, आसक्ति का अभाव है वह त्याग है।

२६०. अहंकार का त्याग करना तथा कंचन, कामिनी और कीर्ति की चाह नहीं होना ही त्याग है। मानसिक विकारों को आत्म स्वरूप के आश्रय से छोड़ना त्याग है और पुण्योदय से प्राप्त धन आदि का दया, दान, परोपकार आदि मानव सेवा में अहंकार रहित होकर सदुपयोग करना दान है।

२६१. भौतिक पदार्थों में आसक्ति होना सांसारिक बंधन है। यह मोह का बंधन ही संसार है।

२६२. मेरे और तेरे का जहाँ तक विकल्प है वहां तक माया का विस्तार है और यह सब मन की माया है।

263. The being who exercises discriminative knowledge, knows own self and the other different to each other and accepts as such, that very being proceeds ahead on the path of accomplishment - and having accepted the true substance happens to be disinterested saint, then affection in insentient objects does not occur to him.

264. To have senselessness in insentient objects is 'parigraha' or to have superfluous holdings, which are a burden on the being, this very, is the cause of pain.

265. Ripeness of delusion is senselessness with which the animate being - happens to be hallucinatory in the world; yet again knowledge of own conscious form does not remain present. The expanse of this ignorance is being becoming to be the cause of consecutive travel in the world, therefore to every being who is inquirer of happiness he should have always been awakened unto himself. He should not have to be unconscious in external objects. Awakening itself is pleasure, senselessness truly is pain.

266. Under the inclination to collect, be involved in physical objects, the grace of love affection etc., are being going on to be destroyed. Greed and infatuation are such foes of the soul that do not allow any quality to be remained in the soul, these faults destroy entirely all the qualities.

267. Under the longing to obtain insentient objects the man gets involved in the mutual competition owing to which psychic deformations of pride, jealousy etc., happen to be produced and increased by dint of it, life of own - self has had to be disquiet. Therefore sentiment of negation of amassing superfluous wealth or holdings should have always to be kept with.

२६३. जो जीव भेदज्ञान करता है, स्व-पर को भिन्न-भिन्न जानता है और मानता है वही जीव साधना के मार्ग में अग्रसर होता है तथा सत्य वस्तु स्वरूप को स्वीकार कर निस्पृह आकिंचन्य हो जाता है फिर जड़ वस्तुओं में उसको मोह नहीं होता।

२६४. अचेतन पढ़ार्थों में मूर्च्छा होना परिग्रह है जो जीव पर भार है बोझ है यही दु:ख का कारण है।

२६५. मोह की परिणति मूर्च्छा है, जिससे प्राणी बाह्य जगत में भ्रमित हो जाता है फिर अपने चैतन्य स्वरूप का बोध नहीं रहता। अज्ञानता का यह विस्तार, संसार में परिभ्रमण का कारण बन रहा है इसलिये प्रत्येक जीव को, जो सुख का अन्वेषक है उसे हमेशा अपने में जागरूक रहना चाहिये। बाह्य पढ़ार्थों में मूर्च्छित नहीं होना चाहिये। जागरण ही सुख है, मूर्च्छा ही दु:ख है।

२६६. भौतिक पढ़ार्थों के संग्रह की प्रवृत्ति में उलझ जाने से प्रेम, स्नेह आदि सद्गुण नष्ट होते चले जाते हैं। लोभ और मोह आत्मा के ऐसे शत्रु हैं जो आत्मा में कोई भी गुणों को शेष नहीं बचने देते, यह विकार सभी गुणों को नष्ट कर देते हैं।

२६७. जड़ वस्तुओं को प्राप्त करने की चाह में आदमी परस्पर प्रतिस्पर्धा में उलझ जाता है जिससे अहंकार, ईर्ष्या आदि अनेक मानसिक विकारों की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। इससे स्वयं का ही जीवन अशांत हो जाता है। इसलिये अपरिग्रह की निरन्तर भावना रखना चाहिये।

268. Senselessness sinks one in the world and the inner awakening makes the life to be fully auspicious. To break loss of consciousness, we shall have to take shelter of original own from and shall have to exercise discriminative knowledge between self and nonself and decision of element continuously.

269. The being takes birth alone in the world and alone only transits out to obtain next birth.

270. The being reaps fruits of'karmas' done by him. There is no other companion happens to be in religion and 'karma' that is eternal truth. In fascination of whom so ever we are doing sinful act, they the connected being will nowhere would give company, then with whom infatuation be got done?

271. Owing to have supremacy of religion in indian culture, celibacy claims supreme -place, infinite storage of strength exists in man's internal celibacy. This is important in itself.

272. Every man is rich in extensive treasure of energy yet being unaware of it, is sorrowful. If downfall of energy takes place then destruction of man is fixed.

273. With destruction of energy, the man is lost of patience, happens to be unsteady and supercilious. His forbearance happens to be destroyed. This very reason is to be got lost within anger for trifling negligible matters.

274. Destruction of energy drives man towards deformations, owing to which not only physical strength altogether happens to be ruined even intellectual strength and power of thinking happens to be got weak, therefore to observe celibacy is imperative.

275. Through observance of celibacy several obtainments take place.'Brahma tej' or God's - glory happens to be obtained by - only celibacy.

२६८. मूर्च्छा भव सागर में डुबाती है और अंतर्जागरण जीवन को मंगलमय बना ढेता है। मूर्च्छा तोड़ने के लिये हमें शुद्धात्म स्वरूप का आश्रय लेना होगा और निरन्तर भेढज्ञान तत्त्व निर्णय का अभ्यास करना होगा।

२६९. संसार में जीव अकेला जन्म लेता है और अकेला ही आगामी योनि को प्राप्त करता है।

२७०. जीव स्वकृत कर्मों के फल को भोगता है। धर्म और कर्म में कोई किसी का साथी नहीं होता यह अटल सत्य है। हम जिनके मोह में पाप कर्म कर रहे हैं, वे संयोगी जीव कहीं साथ नहीं ढेंगे, फिर किससे मोह करना ?

२७१. भारतीय संस्कृति में धर्म की प्रधानता होने से ब्रह्मचर्य का श्रेष्ठ स्थान है, मनुष्य के अंतर में अनन्त शक्तियों का भण्डार निहित है, ब्रह्मचर्य उनमें से एक है जो अपने आपमें महत्वपूर्ण है।

२७२. प्रत्येक मनुष्य ऊर्जा के व्यापक कोश का धनी है किन्तु उससे परिचित न होने के कारण हर मनुष्य ढु:खी है। यढि ऊर्जा का अध:पतन होता है तो मनुष्य का पतन अवश्यंभावी है।

२७३. ऊर्जा के क्षय से मनुष्य धैर्य खो बैठता है, अधैर्यवान और चिड़चिड़ा हो जाता है। उसकी सहनशीलता नष्ट हो जाती है यही कारण है कि छोटे-छोटे प्रसंगों में क्रोधित हो उठता है।

२७४. ऊर्जा का क्षय मनुष्य को अव्रत की ओर ले जाता है। जिससे शारीरिक शक्ति तो नष्ट होती ही है, बौद्धिक बल और चिंतन शक्ति भी कमजोर हो जाती है इसलिये ब्रह्मचर्य का पालन करना अनिवार्य है।

२७५. ब्रह्मचर्य का पालन करने से अनेक उपलब्धियां होती हैं। ब्रह्मतेज, ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त होता है।

276. Celibacy is religion of such supreme kind with whose holding achievement of physical, mental and psychic strength happens to be. Forbearance, patience, purity, gentility, fame etc., several qualities of virtuous nature happen to be got expressed through celibacy.

277. To have restrained upon all five senses of knowledge, and to have restrained upon five organs of action and to have control over all senses and to do merriment in own God form is really celibacy.

278. Through celibacy the ascetic people claim victory even on death.

279. Through celibacy intellect of students happens to be sharp, working capacity of young men happens to be increased along with life happens to be remained sacred.

280. At one side the chastity celibacy is an apparent means of self's good at the same time on the other end it accords with well managed working capacity and endurance to the society.

281. Having done conduct of incontinence of keenness in worldly desires, rapidity of passions, thinking of material pleasures, impurity of eating drinking, etc., the - celibacy happens to be destroyed.

282. The meal taken of royal and toxic nature gets finished with peace and purity of mind and makes it impertinent or unrestrained.

283. To have to do self-development, we shall have to do modification ofenergy, then only we could have done our benefit. By adopting virtuous qualities, road to self good has had to be constructed.

२७६. ब्रह्मचर्य ऐसा परम धर्म है जिसके धारण करने से हमें शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक बल प्राप्त होता है । सहनशीलता, धैर्य, पवित्रता, सज्जनता, कीर्ति आदि अनेकों गुण धर्म ब्रह्मचर्य से प्रगट होते हैं।

२७७. पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रियों पर संयम होना, सभी इन्द्रियों का वश में होना और अपने ब्रह्म स्वरूप में रमण करना ही वस्तुत: ब्रह्मचर्य है।

२७८. ब्रह्मचर्य से योगीजन मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं।

२७९. ब्रह्मचर्य से विद्यार्थियों की बुद्धि तीव्र होती है, युवकों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है तथा जीवन पवित्र रहता है।

२८०. ब्रह्मचर्य एक ओर आत्मा के कल्याण का प्रत्यक्ष उपाय है तो दूसरी ओर समाज को व्यवस्थित कार्य क्षमता एवं धैर्य प्रदान करता है ।

२८१. इन्द्रिय विषयों की लिप्सा, वासनाओं का वेग, विषयों का चिंतन, खान–पान की अशुद्धता और असंयम रूप आचरण करने से ब्रह्मचर्य का नाश होता है।

२८२. राजसी और तामसी आहार मन की शांति और सात्विकता को समाप्त कर मन को उच्छृंखल बना देता है।

२८३. स्वयं के जीवन में आत्म विकास करने के लिये हमें ऊर्जा का रूपांतरण करना होगा, तभी हम अपना आत्म हित कर सकेंगे। सद्गुणों को अपनाने से ही कल्याण का मार्ग बनता है।

284. There does not exist several religions in the world, religion happens to be only one and that is spiritual, non-violence, compassion, and forgiveness. This very is the religion solely of human being. This also has been said as under: - **"Karuna kshama, Ahinsa Dan, Manawta ki yeh pahichan."** 'Compassion, forgiveness, non violence charity; this is the identity of humanity. In having had to own virtuous qualities, the path of self-wefare verily gets constructed.

285. Spiritual religion is that strength which having had to dispel entire separations could have conjoined man with man.

286. Shri guru Taaran Swami ascertained spiritual religion. The spiritual religion is like a huge Banyan tree under whose shade of protection mere human being could have experienced peace.

287. Nature of substance is religion, to identify ownself a fully characteristic form of consciousness, is religion.

288. No personal right of any caste, sect of religious society happens to be upon religion, religion is a personal glory of merely the living being, therefore in performance of religion there is no difference of poor - rich, inferior - superior, of jain non - jain etc.

289. Whosoever human being likes to make his life successful he should have to identify the truth of accomplishment of religion, this very is the means to be supreme happy.

290. In whose life tendency of virtuous form of activity exists and in whose internal aim of own welfare exists that very can obtain self sight and sight of the God.

291. Meaning of true Knowledge is discrimination between existent and non-existent by which word knowledge this strength of wisdom might not come out that knowledge is not conducive to one's well being .That knowledge proves useless in experience of life that remains confined in mind only and has had not to be entered in heart .

२८४. संसार में धर्म अनेक नहीं होते, धर्म एक ही होता है और वह है अध्यात्म, अहिंसा, दया, क्षमा। यही मानव मात्र का धर्म है। कहा भी है – **करुणा क्षमा अहिंसा दान, मानवता की यह पहिचान।**

२८५. अध्यात्म धर्म वह शक्ति है जो समस्त दूरियों को दूर करके मनुष्य को मनुष्य से जोड़ सकती है।

२८६. श्री गुरु तारण स्वामी ने अध्यात्म धर्म की महिमा को प्रतिपादित किया और कहा कि अध्यात्म धर्म वट वृक्ष की तरह विशाल है जिसकी छत्रच्छाया में मानव मात्र आत्म शांति का अनुभव कर सकता है।

२८७. वस्तु का स्वभाव धर्म है, अपने चैतन्य लक्षणमयी स्वरूप की पहिचान करना धर्म है।

२८८. धर्म पर किसी जाति, पंथ या सम्प्रदाय का कोई वैयक्तिक अधिकार नहीं होता, धर्म प्राणी मात्र का निजी वैभव है इसलिये धर्म साधना में गरीब–अमीर, छोटे–बड़े या जैन–अजैन आदि जातियों का भी कोई भेदभाव नहीं है।

२८९. जो भी मानव अपना मनुष्य जीवन सफल बनाना चाहता है उसे धर्म साधना के सत्य को पहिचानना चाहिये यही परम सुखी होने का उपाय है।

२९०. जिसके जीवन में सत्कर्म रूप प्रवृत्ति है और जिसके अंतर में अपने कल्याण का लक्ष्य है वही आत्म दर्शन और प्रभु दर्शन को प्राप्त कर सकता है।

२९१. सच्चे ज्ञान का अर्थ है – सत् असत् का विवेक, जिस अक्षर ज्ञान से यह विवेक शक्ति न आये वह ज्ञान कल्याणकारी नहीं है। जो ज्ञान केवल दिमाग में ही रह जाता है हृदय में प्रवेश नहीं कर पाता, वह जीवन के अनुभव में व्यर्थ सिद्ध होता है।

292. Knowledge worship and conduct are not different ways to obtainment of the supreme spirit, these three in unity with each other is one path.

293. Who have acquired abundant erudition by dint of which their sight has become misty and faith gone sluggish they should awaken real faith with virtuous discrimination. This very is the path to be got saved or relieved from the world.

294 Through which right knowledge of substance element might be gained that is called faith by the virtuous men. The revered persons get relinquished with sin in the same manner the snake does abandoning its skin.

295 Cleanliness and purity of mind is obtained through the knowledge merely. In form of human being identical to a jewel, knowledge itself is quintessential element. In this vast universe there is no other pure means equal to knowledge to get through.

296. Having had to destroy deformities of the mind, the knowledge causes that to be pure. Other precious jewel objects though they are, but insentient, but knowledge called the element fully inclined to consciousness is supreme and great precious jewel.

297. The physical skin eyes though may see only physical objects existing in the present but a third eye, a form of knowledge of man is quite so existing that could have known events of all three times.

298. That always gets delighted the mind; which is best of all element, such embrosial juice of knowledge should have ever be drunk because by dint of knowledge itself, freedom from all kind of circumstances is availed of.

299. Self knowledge itself is said to be supreme knowledge as compared to entire knowledge of 'Shashtras'. In having done annihilation of physical and spiritual, all kinds of darkness, there is none other so equal to illuminating like strength of knowledge.

२९२. ज्ञान , उपासना और आचरण परमात्मा की प्राप्ति के तीन विभिन्न मार्ग नहीं है, वह तीनों मिलकर एक मार्ग है।

२९३. जिन्होंने बहुत विद्धत्ता उपार्जित कर ली है, जिससे उनकी दृष्टि धुंधली और श्रद्धा मंद हो गई है, उन्हें सद्विवेकपूर्वक सच्ची श्रद्धा जगाना चाहिये यही उबरने का मार्ग है।

२९४. जिससे वस्तु तत्त्व का सही ज्ञान हो सके, उसको ही सत्पुरुषों ने श्रद्धा कहा है। श्रद्धाशील पुरुष पाप का इस प्रकार त्याग कर देते हैं जैसे कि सर्प जीर्ण–शीर्ण चमड़ी का त्याग कर देता है।

२९५. बुद्धि की निर्मलता और पवित्रता ज्ञान द्धारा ही प्राप्त होती है। मनुष्य रूप रत्न में ज्ञान ही सार तत्त्व है। विशाल विश्व में ज्ञान के समान पवित्र साधन कोई दूसरा नहीं है।

२९६. ज्ञान मन के विकारों को नष्ट करके उसको पवित्र बनाने वाला है। अन्य रत्न पद्धार्थ तो जड़ हैं, किन्तु ज्ञान नामक चेतना शील तत्त्व सर्वश्रेष्ठ और महान रत्न है।

२९७. चर्म चक्षु तो केवल वर्तमान में उपस्थित भौतिक पद्धार्थों को ही देख सकते हैं, किन्तु मनुष्य का ज्ञान रूप एक तीसरा नेत्र ऐसा भी है जो तीनों काल की घटनाओं को जान सकता है।

२९८. जो सदैव चित्त को आनंद्धित करता है, जो सर्वोत्तम तत्त्व है, ऐसे ज्ञानामृत का सद्धा ही पान करना चाहिये; क्योंकि ज्ञान से ही सभी प्रकार की परिस्थितियों से छुटकारा मिलता है।

२९९. समस्त शास्त्रों के ज्ञान की अपेक्षा से एक आत्मज्ञान ही उत्कृष्ट ज्ञान कहा गया है। भौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के अंधकार को नष्ट करने में ज्ञान शक्ति के समान दूसरा कोई दीपक नहीं है।

300. The Soul itself is the river vaitarani (a river in heaven) and the thorny tree of salmali. The soul is also Kamadhenu (wish fulfilling cow) and the divine garden Nandana.

301. My Soul, endowed with knowledge and vision is alone eternally mine; all others are alien to me and are in the nature of external adjuncts.

302. The Self alone should be restrained because it is most difficult to restrain the self. One who conquers his self becomes happy in this world and will be so in the next.

303. Fight with your own Self. What is the use of Fighting with external Foes? One who conquers one's own self injoys happiness.

304. O man ! you are your own friend, why do you seek the company of other friends ? Control and conquer your own self. By doing so, you will be liberated from all miseries and sorrows.

305. One who is free of deceit attains purity and becomes steadfast in Dharma. Such a person attains the highest emancipation like the lustre of fire sprinkled with ghee.

306. The five senses and four passions (anger, pride, deceit and greed) are difficult to be conquered. But the most difficult is to conquer the self. When the self is conquered, they all automatically get conquered.

307. Just as a tortoise withdraws all its limbs into its own shell, in the same manner a wise men withdraws his senses from all evils by spiritual exertion.

308. The most important thing in life is knowledge : knowledge precedes compassion. This is how all monks achieve self control. What can an ignorant person do? How will he distinguish the meritorious deeds from the evil ones?

३००. यह आत्मा ही वैतरणी (स्वर्ग की नदी) है और यही कूट शाल्मली वृक्ष है। यही कामदुहा (सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाली गाय) है और यही नंदन वन है।

३०१. ज्ञान, दर्शन स्वरूप मेरी आत्मा ही शाश्वत तत्व है। उससे भिन्न जितने भी राग, द्वेष, कर्म, शरीर आदि भाव हैं, वे सब संयोगजन्य बाह्य भाव हैं, अत: वास्तव में मेरे अपने नहीं हैं।

३०२. अपनी आत्मा का ही दमन करो क्योंकि आत्मा ही दुर्दम्य है। अपनी आत्मा पर विजय पाने वाला ही इस लोक और परलोक में सुखी होता है।

३०३. हे प्राणी ! अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध कर। बाहरी शत्रुओं से युद्ध करने से क्या लाभ ? आत्मा को आत्मा के द्वारा जीतने वाला व्यक्ति सुख पाता है।

३०४. हे पुरुष ! तू ही मेरा मित्र है। बाहर क्यों मित्र की खोज करता है ? हे पुरुष ! अपनी आत्मा को ही वश में कर। ऐसा करने से तू सभी दु:खों से मुक्त होगा।

३०५. सरल आत्मा की ही शुद्धि होती है। शुद्ध हृदय में ही धर्म टिकता है। जिस तरह घी से अभिषिक्त अग्नि दिव्य प्रकाश को प्राप्त होती है, उसी प्रकार शुद्ध आत्मा तेज से उद्दीप्त होती हुई परम निर्वाण को प्राप्त होती है।

३०६. पाँच इन्द्रियाँ और चार कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) दुर्जेय हैं। इनसे भी अधिक कठिन अपनी आत्मा पर विजय पाना है। आत्मा को जीत लेने पर ये सब स्वत: ही वश में हो जाते हैं।

३०७. जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को अपने शरीर में समेट लेता है, उसी प्रकार मेधावी पुरुष आध्यात्मिक भावना द्वारा पाप कर्मों से अपने आपको हटा लेता है।

३०८. जीवन में पहला स्थान ज्ञान का है और फिर दया का। सभी साधुवृंद इसी प्रकार संयम में स्थित होते हैं। अज्ञानी क्या कर सकता है ? वह क्या जानेगा कि उसके लिए क्या हितकर है और क्या अहितकर ?

309. Knowledge is of no use in the absence of right conduct, conduct is of no use in the absence of right knowledge. When a lome man and a blind man in a forest are caught in a conflagration, both get burnt because the lome cannot walk and the blind cannot see.

310. Knowledge and conduct together lead to success, just as in a forest fire, when a blind and a lome help each other both manage to reach destination. A chariot does not move by one wheel alone.

311. Just as a threaded needle does not get lost even when it falls on the ground, so a person endowed with sacred knowledge does not get lost in the worldly Sojourn.

312. Knowledge of numerous scriptures is of no use to a person who has no character. Can crores of burning lamps give light to a blind person ?

313. A person who knows swimming but does not endeavour to swim, when fallen in water ultimately drowns. So also a person who knows the path of religion but does not tread it, how can be cross the worldly Sojourn.

314. The vitiated mind is like a furious elephant, but can be controlled by the goad of knowledge.

315. For living beings, four combinations are rare to obtain : human-birth, listening to scriptures, faith in dharma and the energy to practise self-control.

316. Even after having been born as a human being, it is most difficult to get an apportunity to listen to holy scriptures-listening to which makes one practise austerity, forgiveness and non-violence.

317. He who does not endeavour to tread the path of righteousness in this birth, repents at the time of death.

३०९. चारित्र विहीन ज्ञान व्यर्थ है और अज्ञानी की क्रिया व्यर्थ है । जैसे – पंगु व्यक्ति वन में लगी हुई आग को देखते हुए भी भागने में असमर्थ होने से और अंधा व्यक्ति दौड़ते हुए भी देखने में असमर्थ होने से जल मरता है।

३१०. ज्ञान और क्रिया के संयोग से ही फल की प्राप्ति होती है, जैसे – वन में पंगु और अंधा दोनों परस्पर सहयोग से, आग लगने पर भी बच निकलते हैं, केवल एक पहिये से रथ नहीं चलता।

३११. जैसे धागा पिरोई हुई सुई गिर जाने पर भी गुम नहीं होता, वैसे ही शास्त्र ज्ञान युक्त व्यक्ति संसार में रहने पर भी नष्ट नहीं होता।

३१२. शास्त्रों का अत्यधिक अध्ययन भी चारित्रहीन व्यक्ति के लिए किस काम का ? क्या करोड़ों दीपक जला देने पर अंधे को कोई प्रकाश मिल सकता है ?

३१३. तैरना जानते हुए भी यदि कोई व्यक्ति जल प्रवाह में गिरने पर हाथ पाँव न हिलाए, तो वह प्रवाह में डूब जाता है। धर्म को जानते हुए भी यदि वह उसका आचरण न करे तो संसार सागर को कैसे पार कर सकता है ?

३१४. उच्छृंखल मन एक उन्मत्त हाथी की भांति है लेकिन इसे ज्ञान रूपी अंकुश से वश में किया जा सकता है।

३१५. जीव मात्र के लिये चार उत्तम संयोग मिलना अत्यंत दुर्लभ हैं– १. मनुष्य जन्म २. धर्म का श्रवण ३. धर्म में श्रद्धा ४. धर्म के पालन में पराक्रम।

३१६. मनुष्य जन्म प्राप्त होने पर भी उस धर्म का श्रवण अति दुर्लभ है, जिसे सुनकर मनुष्य तप, क्षमा और अहिंसा को स्वीकार करता है।

३१७. जो इस जन्म में परलोक की हित साधना नहीं करता, उसे मृत्यु के समय पछताना पड़ता है।

318. That which is most difficult to acquire and which is transient like the flash of lighting, if such human birth is wasted carelessly by a man, he is an unworthy person and not a noble man.

319. Those who are short-tempered, ignorant, egoistic, harsh, hypoeritical and deceitful drift in the worldly - current as a piece of log in the flow of water.

320. Even if a person walks about unclad and mortifies his flesh by observing austerities and fasts for months together, if filled with deceit, he will be born an endless number of times.

321. The more you get, the more you want; greed increases with every gain. A work which could have been done with two grams of gold, is then not done even with millions of grams of gold.

322. If there were numberless mountains of gold and silver as big as mount kailasa, they would not satisfy an abaricious man; for avarice is boundless like the sky.

323. Just as a crane is produced from an egg and an egg from a crane, in the same way delusion springs from disire and desire gives birth to delusion.

324. One whose mind is always inflicted by greed, who is never content, who always remains mentally anguished, who has unsatiated desires, can he ever obtain happiness ?

325. A revengeful person creates enmity and then takes delight in being revengeful. This chain continues and brings in its wake endless misery.

326. Anger, prejudice, ungratefulness and wrong faith - these are the four blemishes that destroy all the virtues present in a person.

३१८. जो बड़ी कठिनाई से मिलता है, जो बिजली की चमक की तरह अस्थिर है, ऐसे मनुष्य जन्म को पाकर भी जो धर्म के आचरण में प्रमाढ करता है, वह कापुरुष ही है, सत्पुरुष नहीं।

३१९. जो मनुष्य क्रोधी, अविवेकी, अभिमानी, कटुभाषी, कपटी तथा धूर्त हैं, वे अविनीत व्यक्ति नढी के प्रवाह में बहते हुए काठ की तरह संसार के प्रवाह में बहते रहते हैं।

३२०. भले ही कोई नग्न रहे और घोर तप ढ्वारा ढेह को कृश करे, भले ही कोई मास-मास के अंतर से भोजन करे, किन्तु यढि वह मायावी है, तो उसे अनन्त बार गर्भ धारण करना पड़ेगा। वह जन्म और मरण के चक्र में घूमता ही रहेगा।

३२१. जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे-वैसे लोभ होता है। लाभ से लोभ बढ़ता जाता है। ढो माशा सोने से पूर्ण होने वाला कार्य करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओं से भी पूरा नहीं हुआ।

३२२. कढ्राचित् सोने और चांढी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत प्राप्त हो जायें, तो भी लोभी पुरुष को उनसे तृप्ति नहीं होती, क्योंकि इच्छाऐं आकाश के समान अनंत हैं।

३२३. जैसे बलाका (बगुली) अंडे से उत्पन्न होती है और अंडा बलाका से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तृष्णा मोह से उत्पन्न होती है और मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है।

३२४. जिस व्यक्ति का चित्त हमेशा लोभ से लंपट रहता है। जिसे कभी संतोष नहीं है, जो सढा हाय-हाय करता रहता है, जो आशा से ग्रस्त है, उसे क्या कभी सुख प्राप्त हो सकता है ?

३२५. बैरी पुरुष बैर करता है और बाढ में ढूसरों से बैर बढ़ाकर आनंढित होता है । परन्तु इस प्रकार की तमाम पापमय प्रवृत्तियाँ अंत में ढुख:कारक होती हैं।

३२६. क्रोध, ढुराग्रह, अकृतज्ञता और मिथ्यात्व - इन चार ढुर्गुणों के कारण मनुष्य में विद्यमान समस्त गुण नष्ट हो जाते हैं।

327. An aspirant should keep his mind, Fire senseorgans, hands and feet under his control and save himself from falling prey to evil thoughts and the use of evil language.

328. Attachment and aversion are the seeds (root causes) of Karma. Karma originates from delusion. Karma is the root cause of birth and death and these (birth and death) are said to be the source of misery.

329. Anger spoils good relations, pride destroys modesty, deceit destroys amity (Friendship) and greed destroys everything.

330. One should not be complacent with a small debt, a slight wound, a spark of fire and an insignificant passion, because what is insignificant now may soon become uncontrollable.

331. Conquer anger by forgiveness, pride by humility, deceit by straightforwardness and greed by contentment.

332. Just as a monkey cannot sit still even for a single moment, so also the mind cannot remain free from evil thoughts even for a single moment.

333. When the mind becomes stable like the water of a clear pond, then the reflection of the soul can be seen in it.

334. Whenever a soul experiences this or that mental state at that very time it gets bound by a corresponding auspicious or inauspicious karma respectively.

335. The frenzied elephant is controlled and held captive by the chains, so also the unstable mind is controlled and held captive by the chains of knowledge.

336. Just as a hawk pounces upon the partridge and makes it bereft of life, so also when the life span of a person comes to an end, death snatches him from life. Young and old, even the child in the womb, are not spared by death.

337. Time is fleeting and nights are tacking by. The worldly pleasures are not permanant. Just as the birds abandon the tree when is becomes barren, so also pleasures desert a person who becomes in competent.

३२७. विवेकी पुरुष अपने हाथ, पाँव, मन और पाँचों इन्द्रियों को वश में रखे। पाप पूर्ण परिणाम एवं भाषा-द्वोषों से अपने को बचावे।

३२८. राग और द्वेष कर्म के बीज (मूल कारण) हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। कर्म जन्म मरण का मूल है। जन्म मरण को दु:ख का मूल कहा गया है।

३२९. क्रोध प्रीति को नष्ट करता है, मान विनय को नष्ट करता है, माया (कपट) मैत्री को नष्ट करती है और लोभ सब कुछ नष्ट कर देता है।

३३०. ऋृण को थोड़ा, घाव को छोटा, आग को तनिक और कषाय को अल्प मानकर विश्वस्त होकर नहीं बैठ जाना चाहिये क्योंकि यह थोड़े भी बढ़कर बहुत हो जाते हैं।

३३१. क्रोध को उपशम (शान्ति) से, मान को मृदुता से, माया को सरलता से व लोभ को संतोष से जीतें।

३३२. जैसे बंदर क्षणभर भी शान्त होकर नहीं बैठ सकता, वैसे ही मन भी विषय वासना मूलक संकल्प-विकल्प से हटकर क्षणभर के लिये भी शांत नहीं होता।

३३३. मनरूपी जल जब निर्मल एवं स्थिर हो जाता है तब उसमें आत्मा का दिव्यरूप झलकने लगता है।

३३४. जिस-जिस समय जीव जैसे-जैसे भाव करता है, वह उस समय वैसे ही शुभ-अशुभ कर्मों का बंध करता है।

३३५. जैसे उन्मत्त हाथी वरत्रा (सांकल) से वश में कर लिया जाता है, वैसे ही मनरूपी हाथी ज्ञानरूपी वरत्रा से वश में कर लिया जाता है।

३३६. एक ही झपाटे में बाज जैसे बटेर को मार डालता है, वैसे ही आयु के क्षीण होने पर मृत्यु जीवन को हर लेती है।

३३७. काल बीतता जा रहा है, रात्रियाँ भागी जा रही हैं। मनुष्यों के कामभोग भी नित्य नहीं हैं। जैसे क्षीण फल वाले वृक्ष को पक्षी छोड़ देते हैं, वैसे ही अशक्त मनुष्य को काम भोग छोड़ देते हैं।

338. All the senses, beauty, health, youth, vigour, magnificence, fortune and elegance - these are not eternal but ephemeral like a rainbow.

339. When in distress, a person has to experience his miseries all alone. After death he goes to the next life all alone. Hence the wise do not consider anyone worth taking shelter under.

340. At the cessation of life, death grabs one's life, as the lion at one scoop takes away a deer. Mother or father or relatives - none can come to one's rescue at this hour.

341. One should reflect thus - "One day I have to abandon all the wealth and property, land and estates, gold and ornaments, wife and children, relatives and friends and even my own body.

342. Even if this whole world full of wealth is given to a man. He will not be contented with that. It is exteremely difficault to satisfy the desires of an avaricions man.

343. A person who has fallen prey to sensual injoyment and vices is like a traveller who is unable to control his roguish horse and fails to reach his desired destination.

344. O man ! Achieve wisdom and why don't you attain it ? It is rare to acquire right knowledge after death. The nights that once pass away do not return. Similarly, it is not easy to obtain human birth again and again.

345. Religion is supremely auspicious, its constituents are non-violence, self-control and austerity. Even the celestials revere him whose mind is always absorbed in Dharma.

346. For living beings, who are floating on the currents of old age and death, Dharma is the one and only island, the bed rock, the refuge and the most excellent shelter.

३३८. समस्त इन्द्रियां, रूप, आरोग्य, यौवन, बल, तेज, सौभाग्य और लावण्य – यह सब शाश्वत नहीं है किन्तु इन्द्रधनुष के समान अस्थिर हैं।

३३९. दु:ख आ पड़ने पर मनुष्य अकेला ही उसे भोगता है। मृत्यु आने पर जीव अकेले ही परभव में जाता है, इसलिये ज्ञानी पुरुष किसी को शरणरूप नहीं मानते।

३४०. निश्चय ही अंतकाल में मृत्यु मनुष्य को वैसे ही पकड़कर ले जाती है, जैसे सिंह मृग को ले जाता है। अंत में माता–पिता या भाई बंधु कोई उसे बचा नहीं सकते।

३४१. मनुष्य को यह समझना चाहिये कि धन एवं सम्पत्ति, जमीन एवं जायदाद, संतान, बांधव तथा इस देह को भी छोड़कर मुझे एक दिन अवश्य जाना पड़ेगा।

३४२. यदि धन–धान्य से परिपूर्ण यह सारा लोक भी किसी एक व्यक्ति को मिल जाए तो भी वह उससे संतुष्ट नहीं होगा। लोभी व्यक्ति की आकांक्षाओं का पूर्ण होना अत्यंत कठिन है।

३४३. वह व्यक्ति जो भोग–वासनाओं व व्यसनों में आसक्त हो जाता है, उस यात्री की भांति है जो अपने धृष्ट घोड़े पर नियंत्रण नहीं कर पाने के कारण अपनी मंजिल पर पहुंच नहीं पाता।

३४४. हे मनुष्यो ! बोध प्राप्त करो। तुम क्यों बोध प्राप्त नहीं करते ? मृत्यु के बाद संबोधि प्राप्त होना निश्चय ही दुर्लभ है। बीती हुई रातें वापिस नहीं लौटती और न ही मनुष्य भव बार–बार सुलभ होता है।

३४५. धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम और तप उसके मुख्य अंग हैं। जिसका मन सदा धर्म में रमता रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

३४६. जरा और मृत्युरूपी जल के प्रवाह में वेग से बहते हुए प्राणियों के लिए धर्म ही द्वीप, प्रतिष्ठान, गति और उत्तम शरण हैं।

347. One should practise religion properly before old age creeps up, before he falls a prey to various diseases and before his senses become feeble.

348. The nights that pass will never return. They bear no fruit for him who does not abide by Dharma.

349. The nights that pass will never return. They bear fruit only for him who abides by Dharma.

350. Easily obtainable are the enchanting pleasures of the world and the affluence of the gods, easy also it is to get good sons and friend but difficult it is to beget Dharma.

351. The real ornaments that enhance the beauty of a woman are chastity and modesty; the others are mere appendages.

352. Noble is that householder who earns his livelihood by fair means.

353. One should always be prepared to give shelter to the shelterless and help to the helpless.

354. Forgiveness, contentment, simplicity and modesty- these form the four gateways of Dharma.

355. Populous town, village or forest has no relevance to the practise of Dharma as it is the self in which Dharma abides.

356. Not to kill any living being is the quintessence of all wisdom. Certainly, one has to understand that non violence and equality constitute eternal Dharma.

357. A person who speaks the truth becomes trustworthy like a mother, venerable like a preceptor, and dear to everyone like a kinsman.

358. In this world, falsehood is condemned by all saints. A person who utters a lie is trusted by none. Hence one should give up falsehood.

359. Noble persons patiently bear the harsh, wounding and humiliating utterences of the wicked.

३४७. जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधियाँ नहीं बढ़तीं और जब तक इन्द्रियाँ अशक्त नहीं होतीं, तब तक धर्म का अच्छी तरह से आचरण कर लेना चाहिए।

३४८. जो-जो रात्रियाँ बीत जाती हैं, वे लौटकर नहीं आतीं। अधर्म करने वाले की रात्रियाँ निष्फल जाती हैं।

३४९. जो-जो रात्रियाँ बीत जाती हैं, वे लौटकर नहीं आतीं। धर्म करने वाले की रात्रियाँ सफल जाती हैं।

३५०. विश्व के विमल भोग प्राप्त हो सकते हैं, देवताओं की संपत्ति प्राप्त हो सकती है, अच्छे पुत्र व मित्र भी मिल सकते हैं, किन्तु एक धर्म का प्राप्त होना दुर्लभ है।

३५१. नारी का भूषण शील और लज्जा है। बाह्य आभूषण उसकी शोभा नहीं बढ़ाते।

३५२. वह गृहस्थ धन्य है जो न्यायपूर्वक अपनी आजीविका का निर्वाह करता है।

३५३. जो अनाश्रित एवं असहाय है, उनको आश्रय तथा सहयोग देने में सदा तत्पर रहना चाहिए।

३५४. क्षमा, संतोष, सरलता और नम्रता- ये चार धर्म के द्वार हैं।

३५५. धर्म गाँव में भी हो सकता है और वन में भी क्योंकि वस्तुतः धर्म का संबंध न गांव से है और न वन से ही, वह तो अंतरात्मा से है।

३५६. ज्ञानी के ज्ञान का सार यही है कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करे। अहिंसा और समता- यही शाश्वत धर्म है, इसे समझें।

३५७. सत्यवादी व्यक्ति माता की तरह विश्वसनीय, गुरु की तरह पूज्य और स्वजन की भांति सबको प्रिय होता है।

३५८. इस लोक में असत्य वचन सभी सत्पुरुषों द्वारा निंदित है। सभी प्राणियों के लिए वह अविश्वसनीय है। इसलिए असत्य का त्याग करें।

३५९. सज्जन पुरुष दुर्जनों के निष्ठुर अपमानजनक एवं कठोर वचन भी समभावपूर्वक सहन करते हैं।

360. No task daunts the courageous.

361. He who is modest gains knowledge and he who is arragant fails to gain it. Only he who knows these two axioms can be educated and enlightened.

362. The irresolute and fleeting mind which is difficult to be controlled becomes steadfast and tranquil by meditation.

363. An indolent person can never be happy, a lethargic can never acquire knowledge, a person with attachment can never acquire renunciation and one who has a violent attitude cannot be compassionate.

364. It is not possible to get inlightenment again and again.

365. Do not procrastinate. What you have to do tomorrow, do it today it self, for lurking death may lay its cruel hands on you at any moment.

366. Simplicity, humility, compassion and serenity-these are the four virtues that enable the soul to acquire human existence.

367. The present moment is important, strive to make it fruitful.

368. Just as the lotus remains unaffacted from the autumnal water, you too should give up all attachments. Oh Atman ! be not careless even for a while.

369. Knowledge is that which helps to understand reality, controls the mind and which enlightens the soul.

370. Soul itself is supreme self; which is being resplendent in its own stoic experience, which a supreme form of knowledge, eternal spirit, existence of eternal conscious form, fully ever lasting bliss is the God, with whose faith, knowledge, conduct, condition of liberated soul (karya parmatma dasha) happens to be expressed, to such everlasting through all three times, immovable form, supreme spirit, I salute, repeatedly.

३६०. वह कौन सा कठिन कार्य है जिसे धैर्यशील व्यक्ति सम्पन्न नहीं कर सकता ?

३६१. अविनीत को विपत्ति प्राप्त होती है और सुविनीत को सम्पत्ति– ये दो बातें जिसने जान ली हैं, वही शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

३६२. जो बांधने पर भी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता, रोकने पर भी चारों और घूमता ही रहता है, वह चंचल चित्त ध्यान के द्वारा ही शांत होता है।

३६३. आलसी सुखी नहीं हो सकता, निद्रालु विद्याध्यायी नहीं हो सकता, ममत्व रखने वाला वैराग्यवान नहीं हो सकता और हिंसक दयालु नहीं हो सकता।

३६४. सद्बोध प्राप्त करने का अवसर बार–बार मिलना सुलभ नहीं।

३६५. विलम्ब मत करो ! जो कार्य कल करोगे, वह आज ही कर लो; क्योंकि निर्दयी मृत्यु किसी भी क्षण आकर दबोच लेगी।

३६६. सरलता, विनम्रता, दयालुता, अमत्सरता – ये चार तरह के व्यवहार मानवीय गुण हैं, जिनसे मनुष्य भव प्राप्त होता है।

३६७. जो क्षण वर्तमान में उपस्थित है, वही महत्वपूर्ण है, यह जानकर उसे सफल बनाना चाहिए।

३६८. जैसे कमल शरद ऋतु के निर्मल जल से भी निर्लिप्त रहता है वैसे ही तू अपनी सारी आसक्तियों को छोड़। हे आत्मन् ! क्षणभर के लिए भी प्रमाद मत कर।

३६९. ज्ञान उसे कहते हैं जिससे तत्व का बोध होता है, चित्त का निरोध होता है तथा जिससे आत्मा प्रकाशित होती है।

३७०. आत्मा ही परमात्मा है, जो अपने निर्विकल्प स्वसंवेदन में प्रकाशमान हो रहा है, जो परम ज्ञान स्वरूप अनाद्यनिधन सदाकाल चैतन्य स्वरूप रहने वाला चिदानन्दमयी भगवान है, जिसके श्रद्धान, ज्ञान, आचरण से कार्य परमात्म दशा प्रगट होती है ऐसे त्रैकालिक ध्रुव स्वरूप परमात्मा को बारम्बार नमस्कार है।

चिंतन वैभव के प्रकाशन में मूल्य कम करने हेतु दान दाताओं के नाम

श्री महावीर प्रसाद जी श्रावगी कलकत्ता	500/-
श्री देवीलाल चुन्नीलाल जी चपलोत सूरत	500/-
श्रीमती चंदाबाई धर्मपत्नि सेठ श्री कैलाशचंद जी जैन मिर्जापुर	500/-
श्रीमती किरणबाई धर्मपत्नि श्री विमल कुमार जी सिंघई मिर्जापुर	500/-
श्रीमती उमारानी धर्मपत्नि श्री श्रीचंद जी जैन मिर्जापुर	500/-
श्रीमती राजकुमारी धर्मपत्नि स्व. सेठ रमेशचंद जी जैन मिर्जापुर	501/-
श्रीमती अलका धर्मपत्नि सेठ दीपचंद जी जैन मिर्जापुर	501/-
श्रीमती नीलम धर्मपत्नि श्री अशोक कुमार जी गाडरवाड़ा	500/-
श्रीमती कुंती देवी धर्मपत्नि स्व. श्री ज्ञानचंद जी जैन मिर्जापुर	501/-
श्रीमती हेमलता धर्मपत्नि श्री अरविंद कुमार जी जैन मिर्जापुर	501/-
श्रीमती मालती देवी धर्मपत्नि श्री महेश कुमार जी जैन मिर्जापुर	501/-
श्री रामचरण उमेश कुमार जी जैन सतना	501/-
श्रीमती आराधना धर्मपत्नि श्री दीपेन्द्र कुमार जी सतना	501/-
श्री आनंद कुमार आजाद कुमार जी जैन अमरपाटन	501/-
श्रीमती सिताराबाई जैन अमरपाटन	301/-
श्री भगवानदास ऋषभकुमार जी जैन सतना	251/-
श्रीमती सुचित्रा धर्मपत्नि श्री अनिलकुमार जी जैन मिर्जापुर	251/-
श्रीमती उषारानी धर्मपत्नि श्री नरेशचंद जी जैन अमरपाटन	201/-
श्रीमती शीलरानी जैन बीना	201/-
श्रीमती अर्चना समैया बीना	200/-
श्रीमती इन्द्राणी सिंघई बीना	101/-
श्रीमती प्रतिभा जगतसाव बीना	101/-
श्रीमती अरुण मोढी बीना	101/-
श्रीमती रानी समैया बीना	101/-
श्रीमती समता रानी समैया बीना	101/-
श्रीमती क्रांति जगतसाव बीना	100/-
श्रीमती सुमन जगतसाव बीना	100/-
श्रीमती योजना जगतसाव बीना	100/-
श्रीमती शिल्पा जगतसाव बीना	100/-
श्रीमती उषा समैया बीना	101/-
श्रीमती विनोद जैन बीना	100/-
श्रीमती अपर्णा धर्मपत्नि श्री संजीव कुमार जैन मिर्जापुर	101/-
श्री छिकोड़ीलाल मुन्नालाल जी जैन सतना	101/-
श्री फूलचंद पुष्पेन्द्र कुमार जी जैन सतना	101/-
श्री सुनील कुमार जी जैन अमरपाटन	101/-
श्रीमती रत्नमाला धर्मपत्नि श्री रमेशचंद जी जैन अमरपाटन	101/-
श्रीमती ज्योति धर्मपत्नि श्री संजय कुमार जी जैन अमरपाटन	101/-
श्री ज्ञानचंद जी जैन अमरपाटन	101/-
श्रीमती प्रीति धर्मपत्नि श्री विजय कुमार जी जैन अमरपाटन	100/-
श्री सुभाषचंद पूरनचंद जी जैन टालवाले अमरपाटन	100/-

तारण पंथ की साधना

भेदज्ञान – इस शरीरादि से भिन्न मैं एक अखण्ड अविनाशी चैतन्य तत्व भगवान आत्मा हूँ, यह शरीरादि मैं नहीं और यह मेरे नहीं।

तत्व निर्णय – जिस जीव का जिस द्रव्य का जिस समय जैसा जो कुछ होना है, वह अपनी तत्समय की योग्यता अनुसार हो रहा है और होगा, उसे कोई भी टाल फेर बदल सकता नहीं।

वस्तुस्वरूप – मैं ध्रुव तत्व शुद्धात्मा हूं, यह एक-एक समय की चलने वाली पर्याय और जगत का त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध निश्चित अटल है, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है।

द्रव्य दृष्टि – द्रव्य को सत्स्वरूप से देखना।

जो साधक इस साधना पथ पर चलता है वह तारण पंथी अर्थात् मोक्षमार्गी है।